युक्रांद

जनवरी

७४

★

मूल्य : एक रु०

अभिनव आनन्द की सूचना

★★ र ज नी श ★★

द्वै-मासिक पत्रिका का शुभारंभ

☐ कृष्ण की लीला, बुद्ध की करुणा, जीसस का प्रेम तथा लाओत्से की प्रज्ञा का जिसमें दर्शन होता है वैसे वर्तमान युग के पथ-प्रेरक भगवान श्री रजनीश की विद्वत्ता से भरी किन्तु सरल व मधुर वाणी साहित्य के रूप में संग्रहीत की जा रही है।

☐ इस साहित्य का रसपान जो करते हैं, वे स्वयं उसके प्रचारक हो जाते हैं। और नये जिज्ञासु, मुमुक्ष साधकों को इस अद्वितीय, अस्खलित-धारामय साहित्य से प्रतिभिज्ञ कराते हैं। उनकी सहाय हेतु *'रजनीश'* नाम से एक द्वै-मासिक पत्रिका भगवान श्री की प्रेरणा से प्रारम्भ हो गयी है।

☐ इस उत्कृष्ट साहित्य को कला व आधुनिक छपाई से सजाने का दायित्व आनन्दशिला प्रकाशन ने ले लिया है। किन्हीं कारणों से आपकी प्रिय पत्रिका "ज्योतिशिखा" समय से नहीं निकल पा रही थी। अतः उसे समाप्त घोषित कर *"रजनीश"* का प्रारम्भ कर रहे हैं।

☐ *"रजनीश"* का जनवरी-फरवरी-७४ का प्रथम अंक आपके हाथ में आते ही उसका सुन्दर मुखपृष्ठ, ऑफसेट प्रिन्टिंग व कलात्मक रेखाचित्रों से सजा भगवान श्री का यह उत्कृष्ट साहित्य आपका मन मोह लेगा।

अभी ही ग्राहक बनें।

अपने चेक या मनीआर्डर के साथ ग्राहक-फार्म भर कर भेजें।

शुल्क : एक वर्ष—१८ रु०, तीन वर्ष—५० रु०, पांच वर्ष—७५ रु०

शुल्क भेजने का पता :

आनन्द शिला प्रकाशन

साधु आनन्द सागर (प्रवीण द. देसाई)

रूम ६४, ५वां माला, १९/२१,

हमाम स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई, ४००००१.

दूरध्वनि : २५५४६६

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक
संकलन पत्रिका

युगान्तर

वर्ष – ५ अंक – १३ : १४

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
„ वार्षिक : १२-०० रु.

जनवरी १९७४

मानसेवी संपादक मंडल :

○ अरविन्दकुमार
○ डॉ. उर्मिला, पी-एच.डी.
○ 'आकुल' राजेन्द्र
(साधु आनन्द 'आकुल')
○ आलोक पाण्डे

□ स्वामी धर्म सरस्वती, व्यवस्थापक

युक्रान्द

जनवरी

७४

★

अनुक्रमणिका

प्रवचन : संकलन

: ५ : कृष्ण और गीता
(अध्याय ११ का ४ था प्रवचन)
संकलन : अरविन्दकुमार

: ४० : परमात्मा बुद्धि से रहित है
(कैवल्य उपनिषद का प्रवचन अंश)
संकलन : स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती

: ४३ : हमारी अपेक्षायें और मुल्ला नसरुद्दीन की प्रज्ञा
संकलन : स्वामी योग चिन्मय, बम्बई

गीत : काव्य

: ३ : अभी तुम हो, अभी मैं हूं
स्वामी परमानंद भारती, अजमेर

: ३८ : टूटे खिलौनों का सिसकता ढेर
डा. किशोर काबरा, अहमदाबाद

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्दकुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिन्टर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957 P.P.

"अभी तुम हो, अभी मैं हूं"

अभी तुम हो, अभी मैं हूं,
अभी है बात की सुविधा।
अभी दिल भाव भीना है,
अभी कहने की आतुरता।

अभी है आस का सम्बल,
अभी है प्यास प्राणों में।
अभी हैं अश्रुपूर्ण आंखें,
अभी सरगम है श्वासों में।

खयालों में तेरी सूरत,
अभी वंदन को तू मूरत।
सुमन श्रद्धा के हाथों में,
अनुग्रह-भाव के अक्षत।

अहं-अज्ञान का मारा,
खड़ा हूं द्वार पर तेरे।
विलय की वासना लेकर,
पड़ा हूं पांव पर तेरे।

बनाले मीत तू मुझको,
मिटा दे मेरी हस्ती को।
जला दे आशियां मेरा,
बचा दे मेरी मस्ती को।

अभी मन में मेरे दुविधा,
इसी से बात की सुविधा।
अभी तुम हो, अभी मैं हूं,
अभी कहने की आतुरता।

□ परमानंद भारती
अजमेर (राज.)

कृष्ण और गीता

[गीता अध्याय 11 पर भगवान श्री रजनीश जी के 3 जनवरी 73 से 18 जनवरी 73 तक—क्रास मैदान, बंबई में 12 प्रवचन हुए हैं। उस क्रम का एक प्रवचन क्रमांक 8था, श्लोक 18 से 22 के अंश को प्रस्तुत किया गया है।

युक्तांद प्रकाशन का ऐसा प्रयत्न है कि प्रति माह गीता के 11 वें अध्याय का एक-एक प्रवचन दिया जाय, अतः प्रेमी सुविज्ञ साधकों से निवेदन है कि 'युक्तांद' के इन बहुमूल्य अंकों को आप संजो कर रखेंगे तो—वर्ष के अन्त में आपके हाथ में गीता अध्याय 11 पूरा का पूरा हो सकेगा। —सं०]

एक मित्र ने पूछा है कि आपने कहा कि गीता चार व्यक्तियों के संयोग के कारण हमें उपलब्ध हो सकी है—कृष्ण, अर्जुन, संजय और धृतराष्ट्र। लेकिन, गीता श्रीमद्भागवत् का एक अंश है और श्रीमद्भागवत् को महर्षि व्यास ने लिखा है। इसलिए महर्षि व्यास या संजय कौन उसका मूल स्रोत है ?

इस सम्बन्ध में कुछ बातें विचारणीय हैं। एक तो, जो लोग श्रीमद्भागवत् को या गीता को केवल साहित्य मानते हैं, लिट्रेचर मानते हैं, ऐतिहासिक घटनाएं नहीं। जो ऐसा नहीं मानते कि कृष्ण और अर्जुन के बीच

जो घटना घटी है, वो वस्तुतः घटी है, जो ऐसा भी नहीं मानते कि संजय ने किसी वास्तविक घटना की खबर की है, या फिर धृतराष्ट्र कोई व्यक्ति है; बल्कि जो मानते हैं कि वे चारों, व्यास ने जो महासाहित्य लिखा है, उसके चार पात्र हैं। जो ऐसा मानते हैं उनके लिए तो व्यास की प्रतिभा मौलिक हो जाती है, मूल आधार हो जाती है—और फिर सब पात्र हो जाते हैं। तब तो सारे व्यास की ही प्रतिभा का खेल है। जैसे सार्त्र के उपन्यास में उसके पात्र हैं, या दोस्तोवस्की की कथाओं में उसके पात्र हैं, ठीक वैसे ही इस महाकाव्य में भी सब पात्र हैं और व्यास की प्रतिभा से जन्मे—ऐसा भारतीय परम्परा का मानना नहीं है और न ही जो धर्म को समझते हैं वे ऐसा मानने को तैयार हो सकते हैं। तब स्थिति बिल्कुल उल्टी हो जाती है। तब व्यास केवल लिपिबद्ध करने वाले रह जाते हैं, तब घटना तो कृष्ण और अर्जुन के भीतर घटती है। उस घटना को पकड़ने वाला संजय। एक पकड़ने की घटना संजय और धृतराष्ट्र के बीच घटती है, लेकिन उसे लिपिबद्ध करने का काम हमारे और व्यास के बीच घटित होता है। वह तीसरा तल है। जो हुआ है, उसे संजय ने कहा है। जो संजय ने कहा है धृतराष्ट्र को, उसे व्यास ने संग्रहीत किया है, उसे लिपिबद्ध किया है।

अगर साहित्य है केवल, तब तो व्यास निर्माता हैं और कृष्ण, अर्जुन, संजय, धृतराष्ट्र सब इनके हाथ के खिलौने हैं। अगर यह वास्तविक घटना है, अगर यह इतिहास है, न केवल बाहर की आंखों से देखे जाने वाला, बल्कि भीतर घटित होने वाला भी; तब व्यास केवल लिपिबद्ध करने वाले रह जाते हैं, वे केवल लेखक हैं। और पुराने अर्थों में लेखक का इतना ही अर्थ था, वो लिपिबद्ध कर रहा है।

हमारे और व्यास के बीच गहरा सम्बन्ध है, क्योंकि संजय ने जो कहा वो धृतराष्ट्र से कहा है। अगर बात कही हुई ही होती तो खो गयी होती। हमारे लिए संग्रहीत व्यास ने किया। हमारे तो निकटतम व्यास हैं, लेकिन मूल घटना कृष्ण और अर्जुन के बीच घटी और मूल घटना को शब्दों में पकड़ने का काम संजय और धृतराष्ट्र के बीच हुआ। हमारे और व्यास के बीच भी भीतर घट रहा है—उन शब्दों को संग्रहीत करने का। और इसीलिए व्यास के नाम से बहुत से ग्रन्थ हैं। और जो लोग पाश्चात्य शोध के नियमों को मानकर चलते हैं उन्हें बड़ी कठिनाई होती है कि एक ही

व्यक्ति ने, एक ही व्यास ने इतने ग्रन्थ कैसे लिखे होंगे !

सच तो यह है कि व्यास से व्यक्ति के नाम का कोई सम्बन्ध नहीं है। व्यास तो लिखने वाले को कहा गया है। किसी ने भी लिखा हो, व्यास ने लिखा है, लिखने वाले ने लिखा है। कोई एक व्यक्ति ने ये सारे शास्त्र नहीं लिखे। लेकिन लिखने वाले ने अपने को कोई मूल्य नहीं दिया, क्योंकि वह केवल लिपिबद्ध कर रहा है। उसके नाम की कोई जरूरत भी नहीं है। जैसे टेप रिकार्डर रिकार्ड कर रहा है, ऐसे ही कोई व्यक्ति लिपिबद्ध कर रहा हो, तो लिपिबद्ध करने वाले ने अपने को कोई मूल्य नहीं दिया। और इसलिए एक सामूहिक सम्बोधन व्यास—जिसने लिखा। वह सामूहिक सम्बोधन है। वह किसी एक व्यक्ति का नाम भी नहीं है। लेकिन हमारे लिए तो लिखी गई बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है, इसलिए व्यास को हमने महर्षि कहा है। जिसने लिखा है, उसने हमारे लिए संग्रहीत किया है, अन्यथा बात खो जाती।

निश्चित ही संजय के कहने में और व्यास के लिखने में कोई अन्तर नहीं है। क्योंकि लिखने में और कहने में किसी अन्तर की जरूरत नहीं। अन्तर तो घटित हुआ है कृष्ण के देखने में और संजय के कहने में। जो कहा जा सकता है वह लिखा भी जा सकता है। लिखना और कहना दोनों विधियां हैं। कहने में और लिखने में कोई अन्तर पड़ने की जरूरत नहीं है, इसलिए मैंने व्यास को छोड़ दिया था, कोई बात नहीं उठाई थी। वे परिधि के बाहर हैं। हमारे लिए उनकी बहुत जरूरत है। हमारे पास गीता बचती भी नहीं। व्यास के बिना बचने का कोई उपाय न था। लेकिन घटना के भीतर वे नहीं हैं, इसलिए मैंने उनकी चर्चा नहीं की है। ये चार व्यक्ति ही घटना के भीतर गहरे हैं। व्यास का होना बाहर है, परिधि पर है।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या दिव्य-चक्षु सिद्धावस्था के पूर्व भी उपलब्ध हो सकता है ?

नहीं, दिव्य-चक्षु सिद्धावस्था के पूर्व उपलब्ध नहीं हो सकता, क्योंकि दिव्य-चक्षु का उपलब्ध होना और सिद्धावस्था एक ही बात के दो नाम हैं। लेकिन टेलीपैथी, दूर-दृष्टि उपलब्ध हो सकती है। इससे कोई सिद्धावस्था का सम्बन्ध नहीं है। और वह तो ऐसे व्यक्ति को भी उपलब्ध हो सकती है,

जिसकी कोई साधना भी न हो। टेलीपैथी तो हमारे मन की ही क्षमता है। हमारे मन के पास सम्भावना है कि दूर की चीजों को भी देख ले, आंख के बिना। हमारे मन के पास सम्भावना है कि दूर की वाणी को सुन ले, कान के बिना। और बहुत बार तो हममें से अनेक लोग देख लेते हैं, सुन लेते हैं, लेकिन हमें ख्याल नहीं कि हम क्या कर रहे हैं। बहुत बार हमें पीछे पता चलता है, तो आज के युग की वजह से हम सोच लेते हैं, संयोग की बात है।

अगर बेटा मर रहा हो तो दूर मां को भी प्रतीत होने लगता है। कोई सिद्धावस्था की बात नहीं है, सिर्फ एक प्रगाढ़ लगाव है। तो कितना फासला हो, अगर बेटा मर रहा हो तो मां को कुछ परेशानी शुरू हो जाती है—वह समझ पाए या न समझ पाए। अगर बहुत निकट मित्र कठिनाई में पड़ा हो तो मित्र को भीतर बेचैनी शुरू हो जाती है, फासला कितना भी हो। कोई धक्के आंतरिक तरंगों के लगने शुरू हो जाते हैं। कोई संवाद किसी द्वार से मिलना शुरू हो जाता है। जिसके हम ठीक-ठीक उपयोग को नहीं जानते, लेकिन कुछ लोग उसका ठीक उपयोग करना सीख लें तो जरा भी अड़चन नहीं है। आप छोटे-मोटे प्रयोग खुद भी कर सकते हैं, तब आपको ख्याल आएगा कि टेलीपैथी, दूर-दृष्टि, दूर-श्रवण, साधना से सम्बन्धित नहीं हैं, अध्यात्म से इनका कोई लेना-देना नहीं है। आप छोटे-मोटे प्रयोग कर सकते हैं। छोटे बच्चों के साथ करें तो बहुत आसानी होगी।

छोटे बच्चे को बिठा लें एक कमरे के कोने में, कमरे में अन्धेरा कर दें, दरवाजा बन्द कर दें। आप दूसरे कोने में जाएं और उस बच्चे से कहें कि तू मेरी तरफ ध्यान रख अन्धेरे में और सुनने की कोशिश कर कि मैं क्या कह रहा हूं और अपने कोने में बैठकर आप एक ही शब्द मन में दोहराते रहें बाहर नहीं, मन में...कमल, कमल, कमल या राम, राम, राम...एक ही शब्द दोहराते रहें। आप दो तीन दिन में पाएंगे कि आपके बच्चे ने पकड़ना शुरू कर दिया। वह कह देगा कि राम। क्या हुआ ? फिर उससे जब आपका भरोसा बढ़ जाय कि बच्चा पकड़ सकता है, तो फिर मैं भी पकड़ सकता हूं। तब उल्टा प्रयास शुरू कर दें, बच्चे को कहें कि एक शब्द को दोहराता रहे कोई भी—बिना आपको बताए और आप सिर्फ शान्त होकर बच्चे की तरफ ध्यान रखें। बच्चे ने जब तीन दिन में पकड़ा है तो नौ दिन में आप भी पकड़ लेंगे। नौ दिन इसलिए लग जाएंगे कि आप

विकृत हो गए हैं, बच्चा अभी विकृत नहीं हुआ है। अभी उसके यन्त्र ताजे हैं, वह जल्दी पकड़ लेगा। और अगर एक शब्द पकड़ लिया, तो फिर डरिये मत, फिर पूरे वाक्य का अभ्यास भी आप कर सकते हैं। और अगर एक वाक्य पकड़ लिया, तो कितनी ही बातें पकड़ी जा सकती हैं। और बीच में एक कमरे की दूरी ही सवाल नहीं है। जब बच्चा एक शब्द पकड़ ले कमरे में, तो उसको छः मंजिले पर भेज दीजिए, वहां भी पकड़ेगा। फिर दूसरे गांव में भेज दीजिए, वहां भी पकड़ेगा। ठीक समय में नोट कर लीजिए कि ठीक रात नौ बजे बैठ जाएं आंख बन्द करके, वहां भी पकड़ेगा। आप भी पकड़ सकते हैं। इसका कोई आध्यात्मिक साधना से सम्बन्ध नहीं है।

लेकिन बहुत से साधु-संन्यासी इसको करके सिद्ध हुए प्रतीत होते हैं। इससे सिद्धावस्था का कोई भी लेना-देना नहीं है। यह मन की साधारण क्षमता है जो हमने उपयोग नहीं की है, और निरुपयोगी पड़ी हुई है। इसका उपयोग हो सकता है। और जितने चमत्कार आप देखते हैं चारों तरफ साधुओं के आसपास, उनमें से किसी का भी कोई सम्बन्ध आध्यात्मिक उपलब्धि से नहीं है। वे सब मन की ही सूक्ष्म शक्तियां हैं, जिनका थोड़ा अभ्यास किया जाय, तो वे प्रकट होने लगती हैं। और अक्सर तो ऐसा होता है कि जो व्यक्ति इस तरह की शक्तियों में उत्सुक होता है, वह धार्मिक होता ही नहीं; क्योंकि इस तरह की उत्सुकता ही अधार्मिक व्यक्ति का लक्षण है। अक्सर अध्यात्म की साधना में ऐसी शक्तियां अपने आप ही प्रकट होनी शुरू होती हैं। तो अध्यात्म का पथिक उनको रोकता है, उनका प्रयोग नहीं करता है; क्योंकि उनके प्रयोग का मतलब है—भीतर की ऊर्जा का अनेक-अनेक शाखाओं में बंट जाना। हम शक्ति का प्रयोग ही करते हैं दूसरे को प्रभावित करने के लिए। और दूसरे को प्रभावित करने का रस ही संसार है। कोई आदमी धन से प्रभावित कर रहा है कि मेरे पास एक करोड़ रुपये हैं। कोई आदमी एक आकाश छूने वाला मकान खड़ा करके लोगों को प्रभावित कर रहा है कि देखो, मेरे पास इतना आलीशान मकान है। कोई आदमी किसी और तरह से प्रभावित कर रहा हैं कि देखो, मैं प्रधानमंत्री हो गया, कि मैं राष्ट्रपति हो गया। कोई आदमी बुद्धि से प्रभावित कर रहा है कि देखो, मैं महापंडित हूं। कोई आदमी हाथ में ताबीज निकालकर प्रभावित कर रहा है कि देखो, मैं चमत्कारी हूं, मैं सिद्ध पुरुष हूं। कोई राख बांट रहा है—लेकिन सबकी चेष्टा दूसरे को प्रभावित करने की

है। यह अहंकार की खोज है।

अध्यात्म का साधक दूसरे को प्रभावित करने में उत्सुक नहीं है। अध्यात्म का साधक अपनी खोज में उत्सुक है। दूसरे इससे प्रभावित हो जाएं—यह उनकी बात, इससे कुछ लेना-देना नहीं है, इससे कोई प्रयोजन नहीं है, यह लक्ष्य नहीं है; लेकिन दिव्य नेत्र अलग बात है। इसलिए ध्यान रखना, दूर-दृष्टि और दिव्य-दृष्टि का फर्क ठीक से समझ लेना। दूर-दृष्टि तो है संजय के पास, दिव्य-दृष्टि उपलब्ध हुई है अर्जुन को। दिव्य-दृष्टि का अर्थ है—जब हमारे पास अपनी कोई दृष्टि न रह जाय। यह थोड़ा उल्टा मालूम पड़ेगा।

अध्यात्म के सारे शब्द बड़े उल्टे अर्थ रखते हैं। उसका कारण है कि जिस संसार में हम रहते हैं और जिन शब्दों का उपयोग करते हैं, उनका यही अर्थ अध्यात्म के जगत में नहीं होने वाला है। वहां चीजें उल्टी हो जाती हैं। करीब-करीब ऐसे, जैसे आप झील के किनारे खड़े हैं और आपका प्रतिबिम्ब झील में बन रहा है। अगर झील में रहने वाली मछलियां आपके प्रतिबिम्ब को देखें तो आपका सिर नीचे दिखायी पड़ेगा और पैर ऊपर। वह आपका प्रतिबिम्ब है। प्रतिबिम्ब उल्टा होता है। अगर मछलियां ऊपर झांक कर देखें पानी पर, छलांग लेकर देखें, तो बहुत हैरान हो जायेंगी। आप उल्टे मालूम पड़ेंगे ऊपर। मछली को लगेगा कि आप शीर्षासन कर रहे हैं, क्योंकि सिर ऊपर पैर नीचे और उसने सदा आपको नीचे देखा था, सिर नीचे पैर ऊपर। आप उल्टे दिखायी पड़ेंगे। प्रतिबिम्ब उल्टा हो जाता है। संसार प्रतिबिम्ब है।

इसलिए संसार में शब्दों का जो अर्थ होता हैं ठीक उल्टा अर्थ अध्यात्म में हो जाता है। यही ख्याल दृष्टि के बाबत भी रखें। दृष्टि का अर्थ है—देखने की क्षमता। दृष्टि का अर्थ है—दूसरे को देखने की योग्यता। लेकिन अध्यात्म में तो दूसरा कोई बचता नहीं है, इसलिए दूसरे का तो कोई सवाल नहीं है। और दृष्टि का अर्थ सदा दूसरे से बंधा है, आब्जेक्ट से, विषय से। तो दृष्टि का वहां क्या अर्थ होगा ?

महावीर ने कहा है कि जब सब दृष्टि खो जाती है, तब दर्शन उपलब्ध होता है। जब सब देखना-देखना बन्द हो जाता है, जब कोई दिखायी पड़ने पड़ने वाला नहीं रह जाता, जब सिर्फ देखने वाला ही बचता है; तब दर्शन

उपलब्ध होता है। जब देखने वाला दृष्टा ही बचता है तब, तब दिव्य-दृष्टि उपलब्ध होती है। यहां दिव्य-दृष्टि कहना बड़ा उल्टा मालूम पड़ेगा। क्योंकि कहें दृष्टि, जब दृष्टियां खो जाती हैं सब, जब सब बिंदु देखने के ढंग खो जाते हैं, जब सब माध्यम देखने के खो जाते हैं और शुद्ध चैतन्य रह जाता है, तब दृष्टि क्यों कहें। लेकिन, फिर हम न समझ पायेंगे। हमारा ही शब्द उपयोग करना पड़ेगा, तो ही इशारा कारगर हो सकता है।

दूर-दृष्टि तो दृष्टि है। दिव्य-दृष्टि, समस्त दृष्टियों से मुक्त होकर दृष्टा मात्र रह जाना है। तब जो अनुभव होता है, वह अनुभव ऐसा नहीं होता कि मैं बाहर से किसी को देख रहा हूं। तब अनुभव होता है कि जैसे भीतर कुछ हो रहा है। सारा जगत जैसे मेरे भीतर समा गया हो। सब कुछ मेरे भीतर हो रहा हो।

स्वामी राम को जब पहली दफा समाधि का अनुभव हुआ, तो वे नाचने लगे, रोने भी लगे, हंसने भी लगे, नाचने भी लगे। जो पास थे इकट्ठे, उन्होंने कहा कि आपको क्या हो रहा है? आप उन्मत्त तो नहीं हो गए हैं? स्वामी राम ने कहा कि समझें कि उन्मत्त ही हो गया हूं, क्योंकि आज मैंने देखा कि मेरे भीतर ही सूरज ऊगते हैं, और मेरे भीतर ही चांद-तारे चलते हैं। और आज मैंने देखा कि मैं आकाश की तरह हो गया हूं। सब कुछ मेरे भीतर है। और आज मैंने देखा कि वह मैं ही हूं, जिसने सबसे पहले इस सृष्टि को जन्म दिया। और वह मैं ही हूं जो अन्त में सारी सृष्टि को अपने में लीन कर लेगा। मैं उन्मत्त हो गया हूं। यह बात पागल की ही है। हमें भी लगेगा कि पागल की है। लेकिन लगना इसलिए स्वाभाविक है कि हमें ऐसा कोई भी अनुभव नहीं है जहां दूसरा विलीन हो जाता है और केवल देखने वाला ही रह जाता है।

यह जो अर्जुन को घटित हो रहा है, वह दिव्य-दृष्टि है। जो संजय के पास है, वह दूर-दृष्टि है। अब हम सूत्र को लें :

"इसलिए हे भगवन्! आप ही जानने योग्य परम अक्षर हैं, परम ब्रह्म परमात्मा हैं, आप ही इस जगत के परम आश्रय हैं, आप ही अनादि धर्म के रक्षक हैं, आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं—ऐसा मेरा मत है।"

अर्जुन अति विनम्र है। और जो भी जान लेते हैं वे अति विनम्र हो जाते हैं। विनम्रता जानने की शर्त भी है और जानने का परिणाम भी। जो जानना चाहता है उसे विनम्र होना होगा, झुका हुआ। और जो जान लेता है वह अति विनम्र हो जाता है। शायद जान लेने के बाद उसे विनम्र होना ही नहीं पड़ता, विनम्रता उस पर छा जाती है। वह एक हो जाता है विनम्रता के साथ।

अर्जुन देख रहा है—अपनी अनुभूति में सब घटित हुआ; फिर भी कहता है, ऐसा मेरा मत है। यह थोड़ा विचारें। अर्जुन देख रहा है। वह कह सकता है कि मैं देख रहा हूं। वह कह सकता है कि मेरा अनुभव है। लेकिन कहीं मेरा अनुभव कहने से 'मैं' को बल न मिले। वह कहे कि मेरी प्रतीति है, तो कहीं प्रतीति गौण न हो जाय और मेरा होना महत्वपूर्ण न हो जाय।

इसलिए अर्जुन कहता है, कि हे भगवन्! आप ही अक्षर, अविनाशी, परमाश्रय, रक्षक—ऐसा मेरा मत है। 'दिस इज माई ओपिनियन', यह सिर्फ मेरा मत है। यह गलत भी हो सकता है, यह सही भी हो सकता है। मैं कोई आग्रह नहीं करता कि यह सत्य है।

इस कारण कई बार बड़ी कठिनाई खड़ी होती है। जो अहंकारी हैं, वे अपने मत को भी इस भांति कहते हैं, जैसे प्रतीति हो कि यह सत्य है। वे जो नहीं जानते केवल सोचते हैं, उसको भी इस भांति घोषणापूर्वक कहते हैं कि लगे कि यह उनका अनुभव है। और जो जान लिये हैं, वे इस भांति कहते हैं कि ऐसा लगे कि उन्होंने भी किसी से सुना होगा।

पुराने ऋषियों की बड़ी पुरानी आदत है कि वो कहते हैं, ऐसा फलां ऋषि ने फलां ऋषि से कहा है। उन्होंने फिर किसी और से कहा, फिर उन्होंने किसी और से कहा, फिर मैंने किसी से सुना। यह मात्र गहन विनम्रता का परिणाम है। मैंने देखा, इसे कहने में कोई कठिनाई नहीं है—इसे कहने में कोई अड़चन भी नहीं है। अर्जुन अभी कह सकता है कि मैंने देखा, लेकिन अर्जुन कहता है—मेरा मत। बस मेरा ऐसा विचार है, आग्रह नहीं है कि मैं जो कह रहा हूं वह सत्य ही है। क्यों? शायद इस आघात के क्षण में, इस गहन शक्ति का आघात हुआ है उसके ऊपर। इस क्षण में उसे

'मैं' का कोई पता भी नहीं चल रहा होगा। इस क्षण में उसे ख्याल भी नहीं आ रहा होगा कि मैं भी हूं। इसलिए कह रहा है—मेरा मत। यह मत माना भी जाय तो ठीक, न भी माना जाय तो ठीक, यह गलत भी हो। मत और सत्य में इतना ही फर्क होता है। जब कोई कहता है, यह सत्य है तो उसका अर्थ यह है, यह गलत नहीं हो सकता। और जब कोई कहता है यह मत है, तो वह यह कह रहा है कि यह गलत भी हो सकता है। यह मेरा है, इसलिए गलत भी हो सकता है। हमारी स्थिति उल्टी है। जिस चीज को हम कहते हैं—सत्य, हम उसे सत्य ही इसलिए कहते हैं, क्योंकि वह मेरा है। अगर आपसे कोई पूछे कि हिन्दू-धर्म सत्य क्यों है, या कोई पूछे कि मुसलमान-धर्म सत्य क्यों है, या कोई पूछे कि जैन-धर्म सत्य क्यों है? तो जैन-धर्मी कहेगा कि जैन-धर्म सत्य है। हजार कारण बताए, लेकिन मूल में कारण यह होगा कि वह मेरा धर्म है। हिन्दू हजार कारण बताएगा, लेकिन मूल में कारण यह होगा कि वह मेरा धर्म है—चाहे वह कहे और चाहे न कहे। लेकिन अगर विश्लेषण करे, तो उसे पता चलेगा कि जो भी मेरा है, वह सत्य होना ही चाहिए। यह अहंकार का आरोपण है। सत्य—मेरे होने से सत्य नहीं होता। सच तो यह है कि मेरे होने से मेरा सत्य भी असत्य हो जाता है। सत्य होता है अपने कारण। और मैं जितना कम रहूं उतना ज्यादा होता है, और मैं जितना ज्यादा हो जाऊं उतना क्षीण हो जाता है।

इसलिए अर्जुन कहता है—मेरा मत। महावीर इस दिशा में अनूठे व्यक्ति हैं। महावीर से कोई पूछे कि आत्मा है तो वे कहते हैं, ऐसा भी कुछ लोगों का मत है, वे भी ठीक कहते हैं। और ऐसा भी कुछ लोगों का मत है कि नहीं है, वे भी ठीक कहते हैं। और ऐसा भी कुछ लोगों का मत है कि कुछ भी नहीं कहा जा सकता, वे भी ठीक कहते हैं। हम अड़चन में पड़ जायेंगे महावीर के साथ कि अगर सभी लोग ठीक कहते हैं तो फिर ठीक क्या है। महावीर कहते हैं कि बड़े से बड़े असत्य में भी थोड़ा-बहुत सत्य तो होता ही है। उतना सत्य तो होता ही है। उस सत्य को हम पकड़ लें। और महावीर कहते हैं कि बड़े से बड़े सत्य में भी व्यक्ति का अहंकार थोड़ा न बहुत प्रवेश कर जाता है, उतना असत्य हो जाता है। उस असत्य को हम छोड़ दें। इसलिए वे कहते हैं कि जो कहता है, आत्मा नहीं है, उसकी बात में भी थोड़ा सत्य है। कम से कम इतना सत्य तो है ही कि संसारी व्यक्ति का अनुभव यही

है कि आत्मा नहीं है। आपका अनुभव भी यही है कि आत्मा नहीं है। आपका अनुभव यही है कि शरीर है।

तो महावीर कहते हैं कि अगर चार्वाक कहता है कि आत्मा नहीं है तो ठीक ही कहता है। करोड़ों लोगों का अनुभव है कि हम शरीर हैं। आत्मा का पता किसको है? इतना सत्य तो है ही। और अगर हम लोकतंत्र के हिसाब से सोचें तो शरीरवादी का ही सत्य जीतेगा; आत्मवादी का कैसे जीतेगा। कभी करोड़ों में एक आदमी अनुभव कर पाता है कि आत्मा है। करोड़ में एक, बाकी शेष तो अनुभव करते हैं कि हम शरीर हैं।

इसलिए हमने एक बड़ी अद्‌भुत बात की है। हमने चार्वाक को जो नाम दिए हैं, नास्तिक विचार को भारत में, वे बड़े विचारणीय हैं। दो नाम हैं चार्वाक के। एक तो चार्वाक और दूसरा लोकायक। दोनों बड़े मीठे हैं। लोकायक का मतलब है—जिसे लोग मानते हैं, जो लोक में प्रभावी हैं। बड़े मजे की बात है। अगर आप खोजने जाएं तो एक भी आदमी जनगणना के वक्त अपने को नास्तिक नहीं लिखवाता है। कोई हिन्दू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई जैन, कोई बौद्ध। लेकिन हमारी परम्परा कहती है कि चार्वाक को मानने वाले सर्वाधिक लोग हैं, हालांकि कोई नहीं लिखवाता कि मैं चार्वाक वादी हूं। मगर हमारी परम्परा कहती है कि करोड़ में एक को छोड़कर बाकी के सब चार्वाक को ही मानते हैं, चाहे समझते हों, चाहे न समझते हों—चाहे कहते हों, चाहे न कहते हों। उनका अनुभव तो यही है कि वे शरीर हैं और इन्द्रियों से ज्यादा कुछ भी नहीं हैं। और जो इन्द्रियों का भोग है—वही जीवन है।

इसलिए हमने चार्वाक को—हालांकि कोई सम्प्रदाय माननेवाला नहीं है—कहा है लोकायक, लोक जिसको मानता है। और चार्वाक शब्द भी बड़ा अद्‌भुत है। उसका मतलब होता है—चारुवाक्, जिसके वचन बड़े मधुर हैं। बड़ी उल्टी बात है, क्योंकि हम तो बुरे लगेंगे। चार्वाक-वचन जो भी सुनेगा कि ईश्वर नहीं है, वो तो बुरे लगेंगे, कटु लगेंगे। लेकिन हमारी परम्परा ने नाम दिया है—चारु-वाक्, जिनके वचन बड़े मधुर हैं। हमने बड़े सोचकर शब्द दिये हैं। हम ऊपर से कितने ही कहें कि हमें यह बात जंचती नहीं कि ईश्वर नहीं है, भीतर यह बात बड़ी प्रीतिकर लगती है—भीतर बड़ा रस आता है कि ईश्वर नहीं है। बेफिक्र, कोई फिक्र नहीं; चोरी करो, बेईमानी

करो, हत्या करो। ऊपर से हम भला कहें कि यह बात जंचती नहीं; भीतर बहुत जंचती है। तो फिर कोई भी पाप नहीं है।

दोस्तोवस्की ने लिखा है कि अगर ईश्वर नहीं है, 'देन एवरीथिंग इज परमीटेड'। अगर ईश्वर नहीं है, तो फिर हर चीज की आज्ञा मिल गई—फिर कुछ भी करने में कोई रोक नहीं है। अगर ईश्वर है तो अड़चन है। ईश्वर का डर घेरे हुए रहता है। कितने ही अकेले में चोरी कर रहे हों, फिर भी लगा रहता है कि कम से कम कोई एक देख रहा है। अगर नहीं है कोई, तो आदमी स्वतन्त्र है। प्रीतिकर लगेगा भीतर कि कोई ईश्वर नहीं है।

नीत्से ने कहा है—'गाड इज डेड' ईश्वर मर गया। और अब तुम्हें जो भी करना हो तुम कर सकते हो। आदमी स्वतंत्र है। 'नाउ मैन इज फ्री', ईश्वर ही उसका बन्धन था। नीत्से ने कहा है, वही इसकी जान लिए ले रहा था कि यह मत करो, वह मत करो, यह बुरा है, यह भला है; यह पाप, यह पुण्य, यह नर्क, वह स्वर्ग। नीत्से ने कहा है कि ईश्वर मर चुका है और अब मनुष्य स्वतन्त्र है, और अब तुम्हें जो करना हो करो; स्वतंत्रता तो हम सभी चाहेंगे।

इसलिए ऊपर से हम भला कहते हों कि चार्वाक के वचन कटु मालूम पड़ते हैं, भीतर हम भी चाहते हैं कि ईश्वर न हो। क्यों? क्योंकि अगर ईश्वर न हो तो हमारे ऊपर से सारा दबाव हट गया—फिर कोई दबाव नहीं है। फिर आदमी उत्तरदायित्वहीन है। फिर कोई दायित्व नहीं है, फिर कोई जवाब मांगने वाला नहीं है। फिर जिन्दगी स्वच्छन्द होने के लिए मुक्त है। तो भला हम कहते हों कि ये बातें जंचती नहीं है, लेकिन चार्वाक की बातें हमारे मन को बड़ी प्रीतिकर लगती हैं। चार्वाक ने कहा है कि अगर ऋण लेकर भी घी पीना पड़े, तो लेते रहना ऋण, क्योंकि मरने के बाद न कोई लेने वाला है, न कोई देने वाला है, न कोई छुटकारा है। कोई लेना-देना नहीं है, कोई ऋणी नहीं है, कोई धनी नहीं है। सिर्फ नासमझ और समझदार लोग हैं।

चार्वाक ने कहा है, जो समझदार हैं, वे सब तरह से अपनी इन्द्रियों को तृप्त कर लेते हैं, जो नासमझ हैं वे बुद्ध बन जाते हैं और तृप्त नहीं कर पाते। हमको भी प्रीतिकर लगेगी यह बात भीतर। ऊपर तो हम कहेंगे कि

नहीं, लेकिन भीतर हमको लगेगी कि बात तो बड़ी रुचिकर है कि भोग लें। चार्वाक् ने कहा है, इस क्षण कुछ खबर नहीं है अगला क्षण होगा या नहीं होगा, नहीं कहा जा सकता। इसलिए इस क्षण को निचोड़ लें पूरा, जितना भोग सकते हों भोग लें। हम कहते कुछ हों करते यही हैं; न कर पाते हों तो पछताते हैं, और जो कर लेता है उससे हमारी ईर्ष्या—उससे हमारी ईर्ष्या पकड़ जाती है। आप किसी को भी सुख में देखकर बड़े दुखी हो जाते हैं। भला आप कह सकते हों कि धन में कुछ भी नहीं है, लेकिन जिसके पास धन है, उसको देखकर आपको दुविधा शुरू हो जाती है। भीतर दुःख शुरू हो जाता है। भला आप कहते हों कि शरीर में क्या रखा है, यह तो मल-मूत्र है; लेकिन एक सुन्दर स्त्री दूसरे के साथ देखकर बेचैनी शुरू हो जाती है। हम ऊपर से कुछ कहते हों, लेकिन भीतर से हम सब चार्वाकवादी हैं। इसलिए हमने दो शब्द दिए हैं, लोकायक और मधुर वचन वाले लोग : चार्वाक। यह जो चार्वाक कहता है, इसमें भी महावीर कहते हैं, थोड़ा सत्य है, क्योंकि अधिक लोगों का अनुभव तो यही है। हम जो कहते हैं, महावीर कहेंगे वह तो कितने थोड़े लोगों का सत्य है।

इसलिए महावीर कहते हैं, जो भी कहा जाए उसको मत की तरह व्यक्त करना, सत्य की तरह व्यक्त मत करना। कहना कि यह हमारा एक मत है। विपरीत मत भी हो सकते हैं। वे भी ठीक हो सकते हैं। अनेक मत हो सकते हैं, वे भी ठीक हो सकते हैं। आग्रह मत करना कि यही सत्य है, क्योंकि यह आग्रह सत्य को कमजोर कर देता है—'मैं' को मजबूत कर जाता है। थोड़ा ध्यान रखें : जितना आग्रह हम करते हैं, आग्रह सत्य को नहीं मिलता, अहंकार को मिलता है, इसलिए धार्मिक आदमी विनम्र होगा। और अगर धार्मिक आदमी विनम्र नहीं है, तो धार्मिक नहीं है।

इसलिए हमने अपने इस मुल्क में कभी किसी आदमी के धर्म को कन्वहर्ट करने की चेष्टा नहीं की—कभी आग्रह नहीं किया कि हम एक आदमी को समझा-बुझा कर जबर्दस्ती कोई भी उपाय करके एक धर्म से दूसरे धर्म में खींच लें। क्योंकि यह कृत्य ही अधार्मिक हो गया—यह आग्रह करना कि मैं जो कहता हूं वही ठीक है और तुम जो कहते हो वह गलत है, मान लें मेरे धर्म को। चाहे धन देकर, चाहे पद देकर और चाहे तर्कों से, समझा-बुझाकर किसी भी तरह आक्रमण करके, किसी व्यक्ति को उसके धर्म

को बदलने की कोशिश हमने इसीलिए तो नहीं की, कन्व्हर्शन हमने कभी उचित नहीं माना। और उसका कुल कारण इतना था कि कन्व्हर्शन के लिए हिन्दू को ईसाई बनाने के लिए, ईसाई को हिन्दू बनाने के लिए मतांध आदमी चाहिए, जो आग्रह पूर्वक कहें कि यही ठीक है—जो इतने पागलपन से कह सकें कि यही ठीक है और दूसरे को सुनने को बिल्कुल राजी ही न हों। महावीर कैसे किसी को कन्वर्ट करें। अगर उनके विपरीत भी आप जाकर कहें, तो महावीर कहेंगे कि आप भी ठीक हैं—इसमें भी सचाई है, आप जो कह रहे हैं, बड़ा कीमत का है। महावीर के विपरीत कहें तो भी, तो कन्व्हर्शन असम्भव है।

इसलिए महावीर जैसे बहुत विचार का आदमी भी हिन्दुस्तान में बहुत जैन पैदा नहीं करवा पाया। उसका कारण था, क्योंकि कन्वर्ट करने का कोई उपाय ही नहीं था। मतांध आदमी दूसरे पर जबर्दस्ती छा जाते हैं। लेकिन जो मतांध है, वह राजनीतिज्ञ हो सकता है, धार्मिक नहीं। दूसरे को बदलने की चेष्टा ही असल में राजनीति है। स्वयं को बदलने की चेष्टा धर्म है। दूसरे पर छा जाना अहंकार की यात्रा है। अपने को सब भांति पोंछ के मिटा देना धर्म है।

अर्जुन कहता है, यह मेरा मत है। और अभी अनुभव हो रहा है उसे। अभी प्रत्यक्ष, अभी क्षण भी नहीं बीता है, अभी वह अनुभव के बीच खड़ा है। चारों तरफ घटनाएं घट रही हैं उसे। द्वार खुल गया है अनन्त का और ऐसे क्षण में भी अर्जुन कहता है, यह मेरा मत है, यह बहुत कीमती है।

आप ही जानने योग्य परम अक्षर हैं। जानने योग्य...जानने योग्य क्या है ? किस चीज को कहें जानने योग्य ? आमतौर से जिसका कोई उपयोग हो, उसे हम जानने योग्य कहते हैं। विज्ञान जानने योग्य है, क्योंकि उसके बिना न मशीनें चलेंगी, न रेलगाड़ियां दौड़ेंगी, न रास्ते बनेंगे, न कारें होंगी, न यंत्र होंगे, न टेक्नालाजी होगी। विज्ञान जानने योग्य है, क्योंकि उसके बिना जीवन की सुख-सुविधा असम्भव हो जाएगी। चिकित्साशास्त्र जानने योग्य है, क्योंकि उसके बिना बीमारियों से कैसे लड़ेंगे। उपयोगिता...हमारे जानने योग्य का अर्थ होता है—जिसकी यूटीलिटी है, जिसकी उपयोगिता है।

इसीलिए जिन चीजों की उपयोगिता है, उनकी तरफ हम ज्यादा दौड़ते हैं। अगर आज युनिवर्सिटी में जाएं, तो इंजीनियरिंग की तरफ, मेडिकल

साइंस की तरफ दौड़ते हुए युवक मिलेंगे; फिलासाफी, दर्शनशास्त्र के कमरे खाली होते जाते हैं, वहां कोई जाता नहीं है। तो जिनको कहीं जाने के लिए उपाय नहीं बचता, वे वहां चले जाते हैं। सब दरवाजे जिनके लिए बन्द हो जाते हैं, वे सोचते हैं—चलो अब दर्शन-शास्त्र ही पढ़ लें। सारी दुनिया में दर्शन-शास्त्र की तरफ लोगों का जाना कम होता जाता है, क्यों? क्योंकि उसकी उपयोगिता नहीं है। क्या करियेगा? अगर दर्शन में कोई उपाधि भी मिली तो करिएगा क्या? उससे न रोटी पैदा हो सकती है, न यंत्र चलता है। किसी काम का नहीं है, बेकाम हो गया। उपयोगिता गिर गई। हमारे लिए जानने योग्य वह मालूम पड़ता है, जो उपयोगी है।

लेकिन यहां अर्जुन कहता है, आप ही जानने योग्य परम अक्षर हैं। क्या अर्थ होगा इसका? भगवान की क्या उपयोगिता होगी, क्या करिएगा भगवान को जानकर? रोटी पकाइयेगा, दवा बनाइयेगा, यंत्र चलवाइयेगा... क्या करियेगा? अगर उपयोगिता की दृष्टि से देखें, तो भगवान बिल्कुल जानने योग्य नहीं है, जानकर करियेगा भी क्या। अगर आज पश्चिम के मस्तिष्क को हम समझाना चाहें कि भगवान, तो वह पूछेगा कि किसलिए? क्या करेंगे जानकर? क्या होगा जानने से? उपयोगिता क्या है?

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते ध्यान; लेकिन ध्यान से होगा क्या? मिलेगा क्या? उपयोगिता क्या है? स्वभावतः ध्यान के बाबत भी वही सवाल पूछते हैं जो रुपये के बाबत, धन के बाबत पूछेंगे, मकान के बाबत पूछेंगे। उपयोग ही मूल्य है। तो ध्यान का उपयोग क्या है? प्रार्थना का उपयोग क्या है? कोई उपयोग तो मालूम नहीं पड़ता। और परमात्मा तो परम निरुपयोगी है। क्या उपयोग है? उपादेयता क्या है उसकी? उससे क्या कर सकते हैं? कोई 'प्रोफिट मोटिव', कोई लाभ का विचार लागू नहीं होता। क्या करियेगा? और यह अर्जुन कह रहा है कि आप ही जानने योग्य परम अक्षर।

जानने योग्य से हमारी परिभाषा और है। हम कहते हैं उसे जानने योग्य, जिसे जानने के बाद कुछ जानने को शेष न रह जाय। हम कहते हैं उसे जानने योग्य, जिसको जान लिया तो फिर जानने को कुछ बाकी न रहा। तो वह जो जानने की दौड़ थी, समाप्त हो गई। वह जो अज्ञान की पीड़ा थी, तिरोहित हो गई। वह जो जिज्ञासा का उपद्रव था, विलीन हो

गया। जब तक जानने को कुछ शेष है तब तक मन में अशान्ति रहेगी। जब तक जानने को कुछ भी शेष है तब तक तनाव रहेगा। जब तक जानने को कुछ भी शेष है, चिन्ता पकड़े रहेगी कि कैसे जान लें। तो हम जानने योग्य उसे कहते हैं, जिसे जानकर फिर और कुछ जानने को शेष नहीं रह जाता—जिज्ञासा शून्य हो जाती है—तनाव विलीन हो जाता है। सब जान लिया जैसे। एक को जान लिया, सबको जान लिया जाता है।

जानने योग्य, पाने योग्य, कामना करने योग्य—इन सबका भारतीय परम्परा में जो गहन अर्थ है, वह यह एक ही है। पाने योग्य वह है, जिसको पाने के बाद फिर पाने को कुछ बचे ना। कामना करने योग्य वह है, जिसको पाने के बाद फिर पाने को कुछ बचे ना। कामना करने योग्य वह है, जिसके साथ ही सब कामनाएं शान्त हो जाएं। पहुंचने योग्य वह जगह है, जिसके बाद पहुंचने को कोई जगह न बचे। उसको हम कहते हैं अल्टीमेट, परम; वह है परम बिन्दु अभीप्सा का।

अर्जुन कहता है—अनुभव कर रहा हूं, ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आप ही जानने योग्य परम अक्षय हैं, परम ब्रह्म परमात्मा हैं। आप ही इस जगत के परम आश्रय हैं, आप ही अनादि धर्म के रक्षक हैं, आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं, ऐसा मेरा मत है। हे परमेश्वर! मैं आपको आदि, अन्त और मध्य से रहित तथा अनन्त सामर्थ्य से युक्त और अनन्त हाथों वाला तथा चन्द्र, सूर्य रूप नेत्रों वाला और प्रज्ज्वलित अग्नियुक्त मुख वाला तथा अपने तेज से इस जगत को तपायमान करता हुआ देखता हूं।

अब दूसरा रूप शुरू होता है। एक रूप था सुन्दर, मोहक, मनोहर, मन को भाए, लुभाए, आकर्षित करे। लेकिन यह एक पहलू था। अब दूसरा रूप भी होगा, जो जीवन को तपाए, भयंकर अग्नि-मुखों वाला, मृत्यु जैसा विकराल, विनाश करे।

अर्जुन कहता है कि देख रहा हूं कि आपके अनन्त मुख हैं, प्रज्ज्वलित अग्निरूप, आपके हर मुख से आग जल रही है; आभा नहीं, प्रकाश नहीं, आग। पहले ऐश्वर्य की आभा देखी उसने, फिर सूर्यों का प्रकाश देखा उसने, अब अग्नि, अब आग्नेय अनुभव है। मुखों से अग्नि की लपटें निकल रही हैं, और आपके इस तेज से, इस जगत को तपायमान करता हुआ देखता हूं।

लोग जल जाएंगे, लोग तप रहे हैं, लोग भस्मीभूत हो जाएंगे—ऐसा अग्नि रूप अर्जुन के सामने प्रकट होना शुरू हुआ।

जीवन जोड़ है—विपरीत द्वंदों का, डाइलेक्टिकल है, द्वंदात्मक है। यहां जन्म है, तो दूसरे छोर पर मृत्यु है। यहां प्रेम है, तो दूसरे छोर पर घृणा है। यहां सुख है, तो दूसरे छोर पर दुख है। यहां सफलता है, शिखर है; वहां खाई है, असफलता है। जोड़ है सबका। और द्वंद के आधार पर ही सारे जीवन की गति है। हम सब की आकांक्षा होती है, इसमें जो प्रीतिकर है, वह बच रहे; जो अप्रीतिकर है, वह समाप्त हो जाय। हम चाहते हैं कि सुख बच रहे और दुख नहीं। और मजे की बात यह है कि जो ऐसा चाहता है, वह इसी चाह के कारण दुख में गिरता है, क्योंकि दोनों में से एक को बचाया नहीं जा सकता। ये दोनों जीवन के अनिवार्य हिस्से हैं: जैसे कोई चाहे कि खाइयां तो मिट जाएं और शिखर बचें, तो वह पागल है। खाई और शिखर साथ-साथ हैं। एक ही तरंग है। जब शिखर बनता है तो खाई बनती है और खाई मिटती है तो शिखर मिट जाता है। कोई चाहे, जवानी तो बचे और बुढ़ापा मिट जाय, हम सभी चाहते हैं।

लेकिन जवानी शिखर है, तो बुढ़ापा खाई है। जवान होने के साथ ही आप बूढ़े होने शुरू हो जाते हैं। जवानी बुढ़ापे की शुरुआत है। जिस दिन जवान हुए उस दिन जान लेना अब बुढ़ापा ज्यादा दूर नहीं है—अब करीब है। हम चाहते हैं, सौन्दर्य तो बचे, कुरूपता विलीन हो जाय; लेकिन हमें पता ही नहीं कि कुरूपता विलीन हो जाय, तो सौन्दर्य बचेगा कैसे। सौन्दर्य है ही अनुभव—कुरूपता के विपरीत उसी की पृष्ठभूमि में होता है। जब आकाश में काले बादल घिरे होते हैं, तो बिजली चमकती दिखाई पड़ती है। हम चाहते हैं, बिजली तो खूब चमके, काले बादल बिल्कुल न हों। वह काले बादल में ही चमकती है। और काले बादल में चमकती है, तो ही दिखायी पड़ती है। यह जीवन की सारी चमक मृत्यु की ही पृष्ठभूमि में दिखाई पड़ती है। हम चाहते हैं, मृत्यु विदा हो जाय—मृत्यु हो ही न दुनिया में—बस जीवन ही जीवन हो। हमें ख्याल ही नहीं है कि हम क्या कह रहे हैं! हम असम्भव की मांग कर रहे हैं। और असम्भव की जो मांग करता है, वह दुख में पड़ता चला जाता है। यह होने वाला नहीं। समझदार तो वह है जो संभव को स्वीकार कर लेता है और असम्भव को विदा कर देता है अपनी कामना से।

द्वंद जीवन का स्वरूप है। हर चीज दो में है। जिससे हम प्रेम करते हैं, सोचते हैं कि कभी इस पर क्रोध न करें—करना ही पड़ेगा। जिससे हम प्रेम करते हैं उससे क्रोध भी होगा, घृणा भी होगी, संघर्ष भी होगा, द्वंद भी होगा, झगड़ा भी होगा। प्रेम के साथ ही घृणा भी जुड़ी हुई है। इसलिए जितने प्रेमी हैं, लड़ते रहते हैं। जब प्रेमी लड़ना बन्द कर दें, समझ लेना प्रेम समाप्त हो गया। वह जुड़ा है। उसमें एक को बचाने का कोई भी उपाय नहीं है। या तो दोनों बचते हैं, या दोनों विदा हो जाते हैं।

अर्जुन ने एक रूप देखा परमात्मा का। हम भी वह रूप देखना चाहेंगे। लेकिन दूसरे रूप से भी बचने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि अगर जन्म उससे होता है, तो मृत्यु भी उसी से होती है। और अगर अच्छाई

□□□□

जिससे हम प्रेम करते हैं उससे क्रोध भी होगा, घृणा भी होगी संघर्ष भी होगा, द्वन्द भी होगा, झगड़ा भी होगा। प्रेम के साथ ही घृणा जुड़ी हुई है। इसलिए जितने प्रेमी हैं, लड़ते रहते हैं। जब प्रेमी लड़ना बन्द कर दें, समझ लेना कि प्रेम समाप्त हो गया।

□□□□

उससे पैदा होती है, तो बुराई भी उसी से पैदा होती है। और अगर जगत में सौन्दर्य का जन्म उससे होता है, तो कुरूपता भी उसका ही पहलू है। वह भी देखना ही पड़ेगा। वह दूसरी तरफ यात्रा शुरू हो गई। जो लोग भी परमात्मा के अनुभव में जाते हैं, उन्हें इसकी तैयारी रखनी चाहिए।

दुनिया में दो तरह के धर्म हैं—इन दो रूपों के कारण। एक तो वे धर्म हैं, जिन्होंने इस ऐश्वर्य महिमा वाले रूप को प्रमुखता दी है। और एक वे धर्म हैं, जिन्होंने उस भयंकर रूप को प्रमुखता दी है। जैसे कि पुराना जरथुस्त्र, या पुराना यहूदियों का धर्म, ओल्ड टेस्टमेंट, वहां ईश्वर विकराल है, भयंकर है, बहुत क्रूर और कठोर है, दुष्ट मालूम पड़ता है। हम कल्पना भी नहीं कर सकते। इसीलिए जीसस की बात यहूदियों को स्वीकृत न हो सकी। उसका कारण जीसस नहीं थे; उसका कारण था—ओल्ड टेस्टमेंट।

पुराने यहूदी की जो ईश्वर की धारणा थी, उससे बिल्कुल उल्टी बात जीसस ने कही है। पुरानी धारणा यह थी कि ईश्वर, अगर तुमने उसके खिलाफ जरा-सा भी काम किया, तो तुम्हें जलाएगा, मारेगा, सड़ाएगा, अनन्तकाल तक भयंकर कष्ट देगा, दण्ड देगा, नर्क उसने बनाया है। पुराने टेस्टमेंट का जो नर्क है—वह इटर्नल है, अनन्त है। उसमें जरा से पाप के लिए भी फेंका जायेगा आदमी, तो फिर दोबारा वापसी का कोई उपाय नहीं है। और ईश्वर एक भयंकर विकराल व्यक्तित्व है, जिसकी आंखों से लपटें निकल रही हैं; और जिसको शान्त करने का एक ही उपाय है, भय स्तुति, प्रार्थना, उसके चरणों में सिर को रख देना; और वह जो कहता है उसको मान लेना—उसकी आज्ञा के अनुकूल। उसकी आज्ञा से जरा सी प्रतिकूलता हुई तो वह भस्म कर देगा। यह था यहूदी रूप ईश्वर का, यह एक पहलू है। यह गलत नहीं है। यह भी ईश्वर का एक पहलू है। और ऐसा लगता है मोजेस को इसका अनुभव हुआ होगा।

मोजेस ने भूल-चूक से ईश्वर के भयंकर पहलू को पहले देख लिया। और वह भयंकर पहलू मोजेस को इस तरह आविष्ट हो गया कि उन्होंने जो बात कही उसमें वह भयंकर पहलू केन्द्र बन गया।

जीसस उल्टी बात कहते हैं। वे कहते हैं—'गाड इज लव', ईश्वर प्रेम है। इसलिए यहूदी मन जीसस को स्वीकार नहीं कर पाया। कहां ईश्वर था भयंकर और यहूदियों की सारी साधना पद्धति यह थी कि उससे भयभीत होवो, उससे डरो। उससे डरोगे यही धार्मिक होने का लक्षण है। और इस जीसस ने कहा कि ईश्वर है प्रेम। तो जिससे प्रेम है, उससे डरने की क्या जरूरत है? और जिससे हमारा प्रेम है उससे डर समाप्त हो जाता है। और जब डर समाप्त हो जाता है, तो यहूदियों ने कहा फिर ईश्वर का वह जो रूप, उसको हमने कहा—ट्रमेंडस—वह जो भयंकर रूप है, वह जो विकराल तांडव करता रूप है, तो सारा धर्म नष्ट हो जाएगा।

इसलिए जीसस को यहूदी मन स्वीकार न कर पाया। ओल्ड-टेस्टमेंट और न्यू-टेस्टमेंट बड़ी विपरीत किताबें हैं—दो पहलू वाली। लेकिन एक अर्थ में बाइबिल पूरी किताब है। ओल्ड-टेस्टमेंट, न्यू-टेस्टमेंट दोनों मिलकर बाइबिल पूरी किताब है; क्योंकि उसमें परमात्मा के दोनों पहलू हैं। मोजेस ने जो देखा अग्निरूप और जीसस ने जो देखा प्रेम रूप—वे दोनों समाहित

हैं, दोनों इकट्ठे हैं। अगर किसी तरह यहूदी और ईसाइयत दोनों का तालमेल हो जाय गहरा, तो वह ईश्वर की पूरी छबि हो गई। लेकिन बहुत मुश्किल है, क्योंकि जो उसके प्रेमपूर्ण रूप को प्रेम कर पाता है, वह सोच ही नहीं पाता कि वह भयंकर और विकराल भी हो सकता है।

मैं पीछे जार्ज गुर्जियेफ की बात कर रहा था। जार्ज गुर्जियेफ अनूठा आदमी था, जैसा हम साधारणतः साधुओं को मानते हैं—ऐसा भी; और जैसा हम कभी सोच भी नहीं सकते साधु को—वैसा भी। अमरीका के बहुत विचारशील साधक अलिनवाट ने गुर्जियफ को 'रेस्कल सेन्ट' कहा है, रेस्कल सेन्ट। बड़ा अजीब शब्द है। हिन्दी में बनाएं तो और कठिनाई हो जायेगी। शैतान साधु, या कुछ ऐसा अर्थ करना पड़ेगा। मगर ठीक कहा है उसने। गुर्जिएफ ऐसा आदमी था। और लोगों के ऐसे अनुभव हैं कि गुर्जिएफ बैठा हो अपने शिष्यों के बीच और वह इस तरफ मुंह करेगा और उसका मुंह इतना प्रेमपूर्ण होगा और जो लोग उसे देखेंगे प्रफुल्लित हो जाएंगे। और वह दूसरी तरफ मुंह करेगा और उसकी आंखें इतनी दुष्ट हो जाएंगी कि जो लोग उसको देखेंगे, वे एकदम थर्रा जाएंगे। और यह दोनों तरफ बैठे हुए आदमी जब उसके मकान के बाहर जाकर बात करेंगे, तो उनकी बातों का कोई मेल ही नहीं हो सकेगा। क्योंकि एक ने चेहरा देखा तो बड़ा प्यारा है, और एक ने चेहरा देखा उसका बड़ा दुष्टता से भरा हुआ कि वह गर्दन दबा देगा, मार डालेगा, क्या करेगा। और वे दोनों जाकर बाहर कहेंगे : एक कहेगा वह रेस्कल और एक कहेगा वह सेन्ट। अलिनवाट कहता है, वह रेस्कल सेन्ट दोनों था। एक ही साथ था वह आदमी। वह एक आंख से क्रोध प्रकट कर सकता था, एक से प्रेम। बहुत कठिन है, बहुत कठिन है। कोई चालीस साल की लम्बी साधना थी उसकी, इस तरह का अभिनय करने की कि वह एक आंख से क्रोध प्रकट कर सके और एक से प्रेम। और एक हाथ से प्रेम दे सके और दूसरे हाथ से जहर, एक साथ। लेकिन एक अर्थ में वह पूरा सन्त था—पूरा।

अगर हम परमात्मा के दोनों रूप लें, तो वे जो सन्त मछलियों को दाना चुगा रहे हैं और चीटियों को आटा डाल रहे हैं वे एक ही हिस्से वाले मालूम होते हैं—अधूरे। तो दूसरे हिस्से का क्या होगा? कृष्ण में जरूर परमात्मा के दोनों रूप एक साथ प्रकट हुए। इसलिए कई लोगों को कठिनाई

होती है कि कृष्ण को समझें कैसे; क्योंकि कृष्ण का व्यक्तित्व बहुत कन्ट्राडिक्टरी है। एक तरफ आश्वासन देते हैं कि मैं युद्ध में अस्त्र नहीं उठाऊंगा; मौका आता है, उठा लेते हैं। वचन का कोई भरोसा नहीं है, बेईमान हैं। हम सोच भी नहीं सकते कि साधु और वचन दे और पूरा न करे। लेकिन कारण है कि हम ईश्वर के एक ही पहलू को पकड़ते हैं।

कृष्ण में ईश्वर के दोनों पहलू एक साथ हैं। इसलिए कृष्ण एक तरफ गीता जैसा अद्भुत ग्रन्थ दे पाए। दूसरी तरफ स्त्रियों के साथ नाच भी पाते हैं और इसमें उन्हें कोई अड़चन नहीं है, इसमें कोई अड़चन नहीं है। एक तरफ प्रेम की बात भी कर पाते हैं और दूसरी तरफ अर्जुन को युद्ध में जाने के लिए सलाह भी दे पाते हैं—काटो, इसकी भी कोई चिन्ता नहीं है। दूसरी तरफ बांसुरी भी बजा पाते हैं। यह बांसुरी बजाने वाला कभी कहेगा कि उठाओ तलवार और काटो; क्योंकि कोई कटता ही नहीं, बेफिक्री से काटो। यह हमारी समझ के बाहर हो जाता है। इसलिए कृष्ण के भक्त भी बंटे हुए हैं। पूरे हिस्से को कोई स्वीकार नहीं करता। कोई बांसुरी बजाने वाले को स्वीकार करता है, तो बाकी हिस्से को छोड़ देता है—वह अपने काम का नहीं है, सिलेक्ट करना पड़ता है कृष्ण को। कोई दूसरे हिस्से को स्वीकार करता है, तो फिर बांसुरी वाले को मानता है कि यह कवियों की कल्पना होगी—हटाओ।

लेकिन पूरे कृष्ण को स्वीकार करना वैसे ही मुश्किल है, जैसे पूरे जीवन को स्वीकार करना मुश्किल है। और जो पूरे जीवन को स्वीकार करता हो वही केवल कृष्ण को पूरा स्वीकार कर सकेगा। और पूरे जीवन को स्वीकार करने का अर्थ है—परमात्मा की दोनों शक्लें एक साथ; दो शक्लें नहीं हैं। लेकिन परमात्मा की, हमने अपने मुल्क में तीन शक्लों की बात की है। दो को छोड़कर। एक उसका जन्मदाता का छोर, मां का है। एक विध्वंस का—मृत्यु का। ये दो छोर हैं। ये दो शक्लें खास हैं। और बीच में एक शक्ल और है। क्योंकि जहां भी दो हों, वहां जोड़ने के लिए तीसरे की जरूरत पड़ जाती है। ये दो इतने विपरीत हैं कि इनको जोड़ने के लिए तीसरे की जरूरत है, जो दोनों के मध्य में हो।

इसलिए हमने ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन शक्लें त्रिमूर्ति की धारणा की है। उन तीनों मूर्तियों के पीछे एक ही शक्ति है—कहें। एक ही विराट ऊर्जा

है। लेकिन एक तरफ तो वह बनाती है, एक तरफ से मिटाती है, बीच में संभालती भी है; क्योंकि बनने और मिटने के बीच में कोई सम्भालने वाला भी चाहिए। अगर ब्रह्मा और महादेव ही हों जगत में, तो बनना-मिटना काफी होगा, लेकिन और कुछ नहीं होगा, बीच में कुछ भी नहीं होगा। इधर ब्रह्मा बना नहीं पाएंगे, वहां महादेव मिटा डालेंगे। आपको रहने का बीच में मौका नहीं मिलेगा। संसार के लिए उपाय नहीं रहेगा।

इसलिए हमने सारी जमीन पर, जो मन्दिर बनाए, वे विष्णु के मंदिर हैं। और सारे अवतार विष्णु के अवतार हैं। उसका कारण है, क्योंकि वह बीच में है, वही संसार है हमारा। विष्णु संसार है। दो छोर हैं ब्रह्मा और महादेव के। महादेव की हम पूजा करते हैं, तो भय के कारण कि मना-बुझा लो। आपको पता है कि भय के कारण हम बहुत पूजा करते हैं। सभी लोग अपने बही-खाता शुरू करते हैं—'श्री गणेशायनमः'—गणेशजी की स्तुति से। आपको पता नहीं कि क्यों। शायद आप भी कुछ करते हों लेकिन पता नहीं कि गणेशजी की मूर्ति मकान पर बनाए रखते हैं। हर जगह पहले कुछ करना हो, तो गणेशजी की पहले पूजा प्रार्थना करनी पड़ती है। उसका कुल कारण इतना है कि पुराने शास्त्र कहते हैं कि गणेश, जो हैं, वे पहले बहुत विध्वंसकारी थे, बहुत उपद्रवी थे और जहां भी कुछ शुभ कार्य हो रहा हो वहां विघ्न खड़ा करना उनका काम था। विघ्नेश्वर उनका पुराना नाम है। तो वो उपद्रव न करें, इसलिए पहले उनकी स्तुति करते हैं, हम समझा-बुझा लेते हैं कि कोई गड़बड़ न करना महाराज—श्री गणेशायनमः। तो उनको हम पहले स्मरण करते हैं। यह अक्सर हो जाता है, जिससे भय होता है, उसको पहले स्मरण करना है। अब तो हम भूल ही गए कि वे विघ्नेश्वर हैं। अब तो हम समझते हैं, वे मंगलमूर्ति हैं। उपद्रवी हैं, उपद्रव से बचने के लिए कि आपको पहले मना लेते हैं फिर किसी और की करेंगे पूजा और प्रार्थना। आप पहले राजी रहें, नहीं तो सब उपद्रव हो जाएगा।

शंकर की जो हम पूजा प्रार्थना करते हैं, भय के कारण। ब्रह्मा की हम कोई पूजा नहीं करते। शायद एक मन्दिर है मुल्क में ब्रह्मा के लिए और कोई मन्दिर नहीं है, क्योंकि क्या करना वह तो बात खत्म हो गयी। ब्रह्मा ने जन्म दे दिया, अब कुछ और काम है नहीं उनका। शंकर का अभी थोड़ा डर है, क्योंकि मौत वे देंगे। विष्णु के सारे मन्दिर हैं। और सब रूप, राम हों,

कृष्ण हों, सब विष्णु के रूप हैं। और हम उनके मन्दिर में पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं। विष्णु संसार है। वह मध्य है। ये दो छोर हैं। और इन दोनों छोरों को जोड़ने वाली लकीर विष्णु है।

दूसरा छोर अर्जुन को दिखाई पड़ना शुरू हो रहा है—"अग्नि, अग्नि-रूपमुख वाला तथा अपने तेज से इस जगत को तपायमान करता हुआ देखता हूं। और हे महात्मन्! यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का सम्पूर्ण आकाश तथा दिशाएं एक आपसे ही परिपूर्ण हैं। तथा आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर—अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीन लोक अतिव्यथा को प्राप्त हो रहे हैं।"

अर्जुन को दिखाई पड़ रहा है, यह दूसरा रूप। और उसे साथ में दिखाई पड़ रहा है, दूसरे रूप के कारण सारा लोक व्यथित हो रहा है। आप व्यथित हो रहे हैं—किस लिए। बीमारी है, दुख है, मौत है—यह दुख है। मृत्यु गहन दुख है और सारे दुख इसी की छाया हैं। हर आदमी कंप रहा है, दुखी हो रहा है। घबरा रहा है, मिट न जाऊं। जब कोई इस विराट को अनुभव करता है—दूसरे रूप में, तो देखा होगा अर्जुन ने कि सारे लोग मृत्यु के मुंह में चले जा रहे हैं—चाहे वे कुछ भी कर रहे हों। चाहे वे दुकान जा रहे हों, मन्दिर जा रहे हों, घर लौट रहे हों, कहीं भी जा रहे हों आप, आपका जाना-आना कुछ अर्थ नहीं रखता। एक बात तय है कि आप मौत के मुंह में जा रहे हैं। चाहे दुकान जा रहे हों, चाहे घर जा रहे हों। हर हालत में आप मौत के मुंह में जा रहे हैं।

जब अर्जुन को प्रतीत हुआ होगा यह विकराल अग्निमुख, तब उसने देखा होगा सारा लोक, सारे प्राणी, मौत के मुंह में चल रहे हैं और हर एक कंप रहा है। यह बहुत गहन अनुभव है, अगर आप भी आंख बन्द करके लोगों के बाबत सोचें। यहाँ इतने लोग बैठे हैं, अगर आंख बन्द करके क्षण भर को सोचें, तो यहां जो लोग बैठे हैं, वे सब मौत के मुंह में जा रहे हैं। एक घंटा व्यतीत हुआ तो आप मौत के मुंह में सरक गए और थोड़ा ज्यादा। कोई आज मरेगा, कोई कल मरेगा, कोई परसों मरेगा, समय का ही फासला है। हम सब लाशें हैं जिन पर तारीखें लिखी हैं कि कब घोषणा हो जाएगी। लाशें चल रही हैं, गिर रही हैं, उठ रही हैं और कंप रही हैं, क्योंकि वे तारीख हैं।

गुर्जिएफ कहा करता था कि अगर इस जमीन को अब धार्मिक बनाना हो तो एक ही उपाय है, और वह कहता था कि वैज्ञानिकों को सारी चिन्ता छोड़कर एक यंत्र खोज लेना चाहिए घड़ी की तरह, जो हर आदमी के हाथ पर बांध दिया जाय जो हमेशा उसको बताता रहे कि अब मौत कितने करीब है। वह काँटा उसका घूमता रहेगा। यह हो सकता है। कठिन नहीं है।

लेकिन वैज्ञानिक अगर बनायेंगे भी तो हम उस वैज्ञानिक को ही मार डालेंगे, वह यंत्र भी तोड़ देंगे। यंत्र बन सकता है, क्योंकि शरीर के स्पन्दन बताते हैं कि अब आप में कितना जीवन शेष है। आज नहीं कल, क्योंकि बच्चा जब पैदा होता है, तो उसके जो क्रोमोसोम हैं, उसकी जो बनावट के बुनियादी ढांचे हैं, जिस पर खड़ा है सारा जीवन, उनकी नाप-जोख हो सकती है कि ये कितनी देर चलेंगे। जैसे आप घड़ी खरीदते हैं तो दस साल की गारन्टी हो सकती है। तो बच्चा पैदा होता है उसकी सारी की सारी, जिस दिन हम शरीर की व्यवस्था को पूरा समझ लेंगे, उसके कोष की जीवन की व्यवस्था को, उस दिन हम कह सकेंगे कि बस अब सत्तर साल चलेगा, कि अस्सी साल चलेगा। तो फिर एक यंत्र उसके हाथ पर बिठाया जा सकता है, जो बताता रहेगा कि अब कितना कम होता जा रहा है। घड़ी का कांटा घूमता रहेगा और जीवन की तरफ जाता रहेगा और एक दिन आकर मौत पर रुक जायेगा।

लेकिन गुर्जिएफ कहता है, अगर यह यंत्र खोज लिया जाय, तो दुनिया आज फिर से धार्मिक हो सकती है। वह ठीक कहता है। यंत्र चाहे खोजा जाय या न खोजा जाय, जिस आदमी को भी मौत का ख्याल आना शुरू हो जाय उसकी जिन्दगी में परिवर्तन शुरू हो जाता है। क्योंकि, जिसको भी यह पता चल जाय कि मैं मिट जाऊँगा, उसकी सारी वासनाओं का अर्थ खो जाता है। सब बेकार (फ्यूटायल), सब व्यर्थ मालूम होने लगता है—सारा। क्या अर्थ है फिर एक मकान बनाने का। फिर क्या अर्थ है, इतना धन इकट्ठे करने का। फिर क्या अर्थ है कि इतने लोग इज्जत दें, प्रतिष्ठा करें। कुछ भी अर्थ नहीं है। मुर्दे, मुर्दे से प्रतिष्ठा मांग रहे हैं। मुर्दे-मुर्दे से इज्जत इकट्ठी कर रहे हैं। और कुल फर्क इतना है कि हम आते थोड़ी देर से हैं, आप जाते थोड़े जल्दी हैं; या हम जाते थोड़े जल्दी, आप आते थोड़ी देर से हैं। क्यू है, वह जो बस के पास क्यू लगा रहता है। क्यू लगाकर हम मौत के पास खड़े हैं।

आपके पिता जरा आगे होंगे, आपका बेटा जरा पीछे होगा, आप जरा क्यू के बीच में होंगे। बाकी क्यू लगा हुआ है, और उधर मुंह है।

अर्जुन को दिखा होगा कि सारा प्राणी जगत क्यू लगाए खड़ा है, और मौत के मुंह में जा रहा है। और लपटें हर एक के ऊपर घूम रही हैं। इसलिए वह कह रहा है कि सारा जगत, आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीन लोक अति व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं। अलौकिक भी है यह रूप भयंकर भी। अलौकिक क्यों? भयंकर कैसे अलौकिक कहा होगा। अगर आप पूरे को देख पाएं, तो जब पतझड़ हो रही है और पत्ते गिर रहे हैं, और वृक्ष नग्न हो गये हैं। अगर आपको दिखाई पड़ता हो थोड़ा गहरा, अगर आपके पास झांकने की क्षमता हो, तो ये जो पत्ते गिर गए हैं और वृक्ष नग्न हो गए हैं, वह आने वाले बहार की खबर है। ये गिरते हुए पत्ते नये आने वाले पत्तों के द्वारा धक्का दिए गये हैं। भीतर से नये पत्ते आ रहे हैं, वे जगह बना रहे हैं। ये पुराने पत्तों को धक्का दे कर गिरा रहे हैं। वृक्ष थोड़ी देर को नग्न हो गया है, क्योंकि फिर दुल्हन की तरह सजने की उसकी तैयारी है। तो एक तरफ पतझड़ बहुत विकराल है और दूसरी तरफ पतझड़ बसन्त के आगमन की खबर है। वह जो आने वाला है, वह जो हो रहा है।

एक तरफ मौत, दुख है। लेकिन हर मौत जन्म की खबर है। जब एक बूढ़ा आदमी मर रहा है, तो हमें सिर्फ एक मरता हुआ आदमी दिखाई पड़ता है। हमें पता नहीं कि जैसे नया पत्ता पुराने पत्ते को धक्का देकर गिरा रहा है, कोई नया बच्चा इस जगत में प्रवेश कर रहा है, पुराने शरीर को गिरा रहा है। अगर हम इस पूरे को देख पाएं, तो हम देखेंगे कि नया बच्चा किसी गर्भ में प्रवेश कर गया है, और एक बूढ़ा आदमी कब्र के किनारे आ गया है। वह नया बच्चा गर्भ में बढ़ने लगेगा और वह बूढ़ा आदमी कब्र में प्रवेश करने लगेगा। वह नया बच्चा गर्भ को छलांग लगाकर बाहर आ जायेगा, यह बूढ़ा आदमी छलांग लगाकर कब्र में प्रवेश कर जाएगा। यह जरा दूर है फासले पर, इसलिए हमें दिखाई नहीं पड़ता, जरा बड़े परस्पेक्टिव जरा बड़े परिपेक्ष में देखने की नजर चाहिए। तो बूढ़ा आदमी जब मर रहा है, तो नया बच्चा पैदा हो रहा है।

इसलिए अर्जुन कहता है, अलौकिक और भयंकर। इधर देखता हूं कि जन्म हो रहा है, उधर देखता हूं कि मौत हो रही है। और देखता हूं

कि जन्म और मौत किसी एक ही चीज के दो पैर हैं, जिसे हम जीवन कहते हैं, तो बहुत अलौकिक है। अलौकिक क्यों ? क्योंकि लोक में ऐसा दिखाई नहीं पड़ता। अलौकिक का मतलब है, जैसा लोक में दिखाई नहीं पड़ता। यहां तो हम बच्चे को बच्चा देखते हैं, बूढ़े को बूढ़ा देखते हैं, पतझड़ को पतझड़ और वसन्त को वसन्त देखते हैं। यहां हम दोनों को जोड़कर नहीं देखते।

लेकिन जो आदमी जरा ऊपर उठता है और दृष्टि उसकी खुलती है, उसे दिखाई पड़ता है कि ये दोनों तो जुड़े हैं। कल तक हमने समझा था जन्म अलग, मौत अलग, अब हम देखते हैं वह एक ही हैं। वह एक ही लहर के दो छोर हैं। यह अलौकिक है कि अर्जुन को लगता है, बड़ा अलौकिक है। क्योंकि हम तो सोचते थे—सुन्दर अलग, कुरूप अलग। हम तो सोचते थे—मित्र अलग, शत्रु अलग। हम तो सोचते थे अपना-पराया। यहां तो दोनों एक हैं। द्वंद हम सोचते थे विपरीत हैं, यहां पता चलता है कि द्वंद तो मिले हैं। यह तो साजिश है। यह तो जन्म और मौत की साजिश है। ये दोनों एक साथ जुड़े हैं। अब तक हमने विपरीत समझा था। हमने सोचा था—मृत्यु जो है वह जन्म के खिलाफ है और हमने चाहा था कि मृत्यु को रोक दें, ताकि जगत में जन्म ही जन्म रह जाय।

लेकिन हमें पता नहीं है कि हम जो सोचते हैं वह हो नहीं सकता, क्योंकि अस्तित्व हमारे ख्याल में नहीं है। जिस दिन जन्म हुआ मौत हो गई। जन्म के साथ ही मरना शुरू हो गया। आप कल मरेंगे, लेकिन मरने का काम आपको जीवन भर करना पड़ेगा तब तो मरेंगे। एकदम से कैसे मरेंगे। इस जगत में कुछ भी एकदम से नहीं घटता। प्रक्रिया है, सीढ़ी-सीढ़ी चढ़ेंगे और मरेंगे। तो जन्म पहला कदम है मौत की तरफ। अगर जन्म पहला कदम है मौत की तरफ, तो जो देखता है, उसको दिखाई पड़ेगा कि मौत फिर पहला कदम है नये जन्म की तरफ। हम मरते आदमी को देखते हैं कि मर गया, क्योंकि हमें आगे कुछ दिखाई नहीं पड़ता। हमें लगता है कि बस एक खाई के किनारे जाकर एक आदमी गिर गया, खत्म हो गया, क्योंकि हमें आगे दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन जहां मौत घट रही है, तत्क्षण उससे जुड़ा हुआ जन्म घट रहा है, क्योंकि इस जगत में कुछ भी मिट नहीं सकता—मिटने का कोई उपाय भी नहीं है।

वैज्ञानिक कहते हैं, रेत के एक छोटे से कण को भी नष्ट नहीं किया जा सकता। इस जगत में जितना है, जो है, वह उतना ही है, उतना ही रहेगा। न हम उसमें कुछ जोड़ सकते हैं न कुछ घटा सकते हैं। तो फिर एक आदमी मरता है, मर कैसे सकेगा ? कुछ मिटता नहीं है, तो यह आदमी कैसे मिट सकेगा ? यह केवल हमारी नजर से ओझल हुआ जा रहा है। जहां तक हम देख सकते हैं वहां तक दिखाई पड़ रहा है, उसके पार हम नहीं देख सकते, यह किसी नये डायमेन्शन में, किसी नये आयाम में प्रवेश कर रहा है—जहां हमें दिखाई नहीं पड़ता। जैसे एक जहाज जाता है पानी में। दिखाई पड़ता है, दिखाई पड़ता है, दिखाई पड़ता है, फिर फीका होता जाता है, फीका होता जाता है, फिर अचानक तिरोहित हो जाता है; क्योंकि जमीन गोल है। जैसे ही जमीन की उस गोलाई को जहाज पार कर लेता है, जिसके पार गोलाई उसको छुपाने का कारण बन जाएगी, हमारी आंख से ओझल हो जाता है, गया।

मृत्यु भी एक वर्तुल, एक गोलाकार घटना है। जन्म और मृत्यु तक आधा वर्तुल पूरा होता है। फिर मृत्यु से जन्म तक आधा वर्तुल पूरा होता है। मृत्यु के किनारे जाकर एक चेतना उस ओझल होते जहाज की तरह आगे निकल जाती है, जहां तक हम देखते हैं, उस सीमा के आगे हम कहते हैं—आदमी मर गया, शरीर गिरकर हमारे पास रह जाता है, चेतना नये जन्म की यात्रा पर निकल जाती है।

जब अर्जुन ने देखा होगा कि जन्म और मौत एक ही वर्तुल के हिस्से हैं, सुन्दर-कुरूप एक ही वर्तुल के हिस्से हैं, मित्र-शत्रु एक ही बात है, तो अलौकिक लगा होगा; क्योंकि लोक में ऐसा अनुभव नहीं होता है। और भयंकर भी लगा कि यह क्या है सब। घबड़ाने वाला भी लगा और यह देखकर कि सारा जगत इसमें फंसा हुआ है; वह कहने लगा, "और हे गोविन्द ! वे देवताओं के समूह आप में ही प्रवेश कर रहे हैं, और कई एक भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए आपके नाम और गुणों का उच्चारण कर रहे हैं। देवता भयभीत होकर, हाथ जोड़े हुए, आपके ही नाम और गुणों की स्तुति कर रहे हैं।" यह थोड़ा विचारें।

मनस्विद्, समाज शास्त्री कहते हैं कि धर्म का जन्म भय से हुआ है। उनके कारण दूसरे हैं। वे कहते हैं, आदमी डरता है प्रकृति की शक्तियों से।

और डर की वजह से उन्हें फुसलाने के लिए हाथ जोड़कर प्रार्थना करता रहता है। आकाश में बादल गरजते हैं, अगर आप गुफा में रहते होते, रहे होंगे कभी, तो घबड़ा गए होंगे। प्रकृति की विराट शक्तियां हैं, विध्वंस कर सकती हैं, क्षण में पहाड़ गिर जाते हैं लोग दब कर नष्ट हो जाते हैं। भूकम्प होता है लोग विनष्ट हो जाते हैं, खो जाते हैं। गर्जना होती है बिजली की, कुछ समझ नहीं आता। तूफान आते हैं, बाढ़ आती है, और कुछ आदमी कर नहीं सकता। तो विज्ञानविद् कहते हैं कि आदमी उस भय की स्थिति में एक ही बात सोच सका। और वह यह थी कि यह जो इतनी भयभीत करनेवाली शक्तियां हैं, इनसे प्रार्थना की जाय, इन्हें परसुएड किया जाय, फुसलाया जाय कि मत, नाराज मत हों। वह यही सोच सका कि नाराज हो गई है नदी, इसलिए हाथ जोड़कर प्रार्थना करो। नाराज हो गए हैं बादल, इसलिए पानी नहीं गिर रहा है, हाथ जोड़कर प्रार्थना करो, कुछ पूजा करो, स्तुति करो, महिमा गाओ।

वैज्ञानिक कहते हैं, इसी भय से धर्म का जन्म हुआ है। थोड़ी दूर तक उनकी बात सच है। लेकिन बहुत ज्यादा दूर तक नहीं है। बहुत ज्यादा दूर तक नहीं है। थोड़ी दूर तक इसलिए सच है कि जरूर भय का थोड़ा हाथ है। लेकिन इतना ही भय काफी नहीं है। असली भय न तो नदियों का है, असली भय न तो पहाड़ों के गिरने का है, असली भय न तो ज्वालामुखियों के फूटने का है, असली भय तो मौत का है। मौत के भय के कारण ही बाढ़ भी भयभीत करती है, ज्वालामुखी भी भयभीत करता है। लेकिन अगर पहाड़ गिरे और आप न मरें और वैसे के वैसे ही वापिस निकल आएं, फिर पहाड़ भयभीत नहीं करेगा। बाढ़ आए और कुछ न बिगाड़ पाए, पृथ्वी कंपे और आप अडिग बैठे रहें और आपका बाल भी बांका न हो, तो फिर भय नहीं होगा। तो न तो पहाड़ों का भय है, न नदियों का भय है, न सूर्यों का भय है, भय तो सिर्फ एक है मौत का।

इसको अगर हम ठीक से समझें, तो एक ही भय है मिट जाने का। मैं नहीं हो जाऊंगा। मैं नहीं बचूंगा, मेरा मिटना हो जायेगा, मैं शून्य हो जाऊंगा, 'न-कुछ' हो जाऊंगा। मेरी सब रेखाएं खो जायेंगी, जैसे रेत पर बनी रेखाएं हवा का झोंका आए और मिट जाएं। ऐसा मैं नहीं हो जाऊंगा।

ये नथिंगनेस—सार्त्र ने एक किताब लिखी है—'बीइंग एण्ड नथिंगनेस', होना और न होना। सारी कथा जीवन की यही है। हैं हम, और न होना

हमें चारों तरफ से घेरे हुए है और कुछ भी करें वह कंपाता है कि आज नहीं कल, आज नहीं कल, मैं नहीं हो जाऊंगा। यह है भय। जिससे कि एक भय से धर्म का विचार पैदा हुआ होगा। और यह ख्याल में आना शुरू होगा कि अगर नहीं ही हो जाना है, तो इसके पहले कि मैं नहीं हो जाऊं, वह थोड़ा इसका भी तो पता लगा लूं कि क्या कुछ मेरे भीतर ऐसा भी है, जिसे दुनिया की कोई शक्ति मिटा नहीं सकती। तो सारी मृत्यु भी आ जाय तो भी मेरे भीतर कोई अमृत बचेगा। क्या मैं बचूंगा ? सारे मिटने की घटना के बाद भी क्या कुछ बच रहेगा ? वह कुछ क्या है ? उसको ही हम आत्मा कहते हैं। वही सार जिसको मृत्यु नहीं मिटा पाती—उसका नाम आत्मा है।

अगर आपको ऐसा पता चलता हो कि जो भी आप अपने बाबत जानते हैं, वह मृत्यु में मिट जाएगा; तो आप पक्का समझना कि आपको आत्मा का कोई पता नहीं है। अगर आपको ऐसी किसी चीज का अनुभव होता हो आपके भीतर, जो मृत्यु में नहीं मिटेगी, तो ही समझना कि आपको आत्मा का कोई अनुभव शुरू हुआ है। आत्मा मानने की बात नहीं है, अनुभव की बात है। आत्मा मृत्यु के विपरीत खोज है।

अर्जुन देख रहा है कि आदमी की तो विसात क्या, देवता भी कंप रहे हैं। वे भी हाथ जोड़े खड़े हैं। उनके भी घुटने टिके हैं। वे भी प्रार्थना कर रहे हैं। वे आपका नाम लेकर उच्चारण कर रहे हैं, स्तुति कर रहे हैं। क्यों ? क्योंकि देवता भी मिटने से उतना ही डरा हुआ है। बुरा आदमी ही मिटने से डरता है, ऐसा मत समझना, भला आदमी भी मिटने से डरता है। बल्कि कई दफे तो बुरे आदमी से ज्यादा भला आदमी मिटने से डरता है; क्योंकि भले को लगता है कि इतना सब भला किया और मिट गए। बुरे को लगता है, डर भी क्या है, ऐसा कुछ किया भी क्या है, जिसको बचाने की जरूरत हो। मिट गये तो मिट गये। और बुरा तो चाहेगा कि मिट ही जाएं तो अच्छा है, क्योंकि जो किया है, कहीं उसका फल न भुगतना पड़े। भला चाहता है—बचे। क्योंकि इतना उपद्रव किया है, इतनी साधना की है, इतने व्रत-उपवास किए, इतनी पूजा-प्रार्थना की और मिट गए। इसका पुरस्कार ! तो नाहक ही जीवन गया।

देवता भली चेतनाओं के नाम हैं—शुद्धतम चेतनाओं के नाम हैं; लेकिन देवता वासना के बाहर नहीं हैं। शुद्धतम चेतना है, लेकिन वासना के

भीतर। इसलिए हमने मनुष्य से देवता को एक अर्थ में ऊपर रखा है कि वह मनुष्य से ज्यादा शुद्धतर स्थिति है। लेकिन एक अर्थ में नीचे भी रखा है, क्योंकि अगर उसको मुक्त होना हो तो उसे फिर मनुष्य में वापिस लौट आना पड़ेगा। मनुष्य चौराहा है। पशु होना हो तो मनुष्य की तरफ से यात्रा जाती है। देवता होना हो तो मनुष्य की तरफ से यात्रा जाती है। और अगर समस्त जीवन के पार जाना हो, तो भी मनुष्य से ही यात्रा जाती है। तो देवता एक छोर है शुद्ध होने का।

इसे हम ऐसा समझें कि अगर नैतिक आदमी सफल हो जाय पूरी तरह तो देवता हो जायेगा। नैतिक आदमी अगर सफल हो जाय पूरी तरह जो दस धर्मों को मानकर चलता है, अगर सफल हो जाय पूरी तरह, अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अचौर्य, सब सध जाय, सारे पाप क्षीण हो जायं और सारे पुण्य उसे उपलब्ध हो जायें, तो हमारी अन्तिम कल्पना है, वह यह है कि वह देवता हो जायेगा। वह शुद्धतम होगा, उसके पास शरीर नहीं होगा, सिर्फ चेतना होगी। उसके पास इन्द्रियां नहीं होंगी, लेकिन वासना होगी। इन्द्रियों के कारण वासना से जो बाधा पड़ती है, वह उसे नहीं पकड़ेगी। उसकी वासना, उसकी इच्छा पैदा होते ही पूरी हो जाएगी उसी क्षण। वह सोचेगा यह हो, वैसा हो जाएगा। उसकी वासना में और वासना के पूरे होने में समय का व्यवधान नहीं होगा। आपको भूख लगती है, तो फिर रोटी बनानी पड़ती है, भोजन पकाना पड़ता है, या होटल जाना पड़ता है, आर्डर करना पड़ता है, समय लगता है। देवता को भूख लगेगी, भोजन हो जाएगा। बीच में कोई इन्द्रियां नहीं हैं, जिनके बीच समय के लिए कोई बाधा पड़े, कोई माध्यम नहीं है। उसकी वासना उसकी तृप्ति होगी, लेकिन वासना जहां होती है, वहां अहंकार भी होता है। और जहां अहंकार होता है वहां मिटने का डर भी होता है। जब तक लगता है—मैं हूं, तब तक मिटने का डर भी रहेगा। तो देवता भी डर रहा है। बल्कि सच तो यह है कि देवता आपसे ज्यादा डर रहे हैं, क्योंकि उनके पास खोने को ज्यादा है।

कम्यूनिस्ट कहते हैं कि जब तक जमीन पर किसी मुल्क में बड़ी संख्या ऐसी न हो जाय जिसके पास खोने को कुछ भी नहीं, तब तक क्रांति नहीं हो सकती। वे ठीक कहते हैं। मध्यमवर्गीय आदमी कभी क्रांतिकारी नहीं होता। और धनपति तो क्रांतिकारी होगा कैसे? क्योंकि क्रांति का

मतलब है 'जो है' वह खो जाएगा। मध्यमवर्गीय भी क्रांतिकारी नहीं होता। इसलिए अमरीका में कोई क्रांति नहीं हो रही। क्योंकि अमरीका में पूरा देश मध्यवर्गीय हो गया है। गरीब से गरीब आदमी भी बिल्कुल गरीब नहीं है, उसके पास भी कुछ है। और वह जो कुछ है, वह खुद उसको बचाना चाहता है, तो क्रांति की बातचीत में वह नहीं पड़ सकता, क्योंकि क्रांति में खोने का डर है। और अगर तुम दूसरों से छीनने जाओगे, तुम्हारा भी छिन जाएगा। तो क्रांति रोकने का एक ही उपाय अमरीका में सफल हो पाया है, और वह यह कि जो क्रांति नहीं कर सकते हैं, उनके पास कुछ होना चाहिए। अगर उनके पास कुछ भी नहीं तो फिर बहुत उपद्रव है, फिर क्रांति होगी। डर क्या है ? डर हमेशा यह है कि जो मेरे पास है, वह खो न जाय।

इसलिए आपने कहानियां सुनी हैं पुरानी, लेकिन कभी उस कोण से नहीं देखा होगा। इस पूरे प्राणियों के विस्तार में इन्द्र से ज्यादा भयभीत पुरानी कहानियों में कोई भी नहीं मालूम पड़ता। हमेशा उसका सिंहासन डगमगा जाता है। जरा ही किसी ने तपस्या की कि उनको तकलीफ शुरू हो गई। कोई साधु मुनि बेचारा ब्रह्मचारी हुआ कि वे मुश्किल में पड़ गए और उन्होंने अपनी अप्सराएं भेजीं कि करो भ्रष्ट इसको। आखिर इन्द्र को इतना डर क्या है ? इतना क्या भय है ? भय का कारण है उसके पास, वह शिखर पर बैठा है वासना के।

देवता शुद्धतम वासना है और देवताओं में श्रेष्ठतम वासना, आखिरी शिखर, एवरेस्ट गौरीशंकर वह इन्द्र है। वहां एक ही पहुंच सकता है। वह शिखर आखिरी है चोटी। वहां दो नहीं हो सकते। तो जब भी नीचे कोई ऊपर चढ़ने की कोशिश शुरू करता है तब वह शिखर कंपने लगता है और इन्द्र घबड़ाता है। इसके पहले कि वह आदमी चढ़े इसको उतारने की कोशिश करो। और आदमी को उतारने के लिए स्त्री से ज्यादा बेहतर और कुछ भी नहीं है। भेजो स्त्री। वह तो स्त्रियों ने साधना नहीं की, नहीं तो आदमियों को भेजना पड़ता। इसमें कोई फर्क नहीं है। स्त्रियां इस झंझट में नहीं पड़ीं कि क्यों तकलीफ दो, इन्द्र को काहे को हिलाओ। किसी को क्यों तकलीफ दो !

यह जो भय है, इन्द्र का, यह बहुत सायकोलोजिकल है, यह बहुत मन के गहरे में है। जो भी शिखर पर होगा किसी चीज के, वह उतना ही ज्यादा

भयभीत हो जायगा। आप जिस मजे से सोते हैं, प्रधानमंत्री नहीं सो सकता। कोई उपाय नहीं है, क्योंकि कई ऋषि-मुनि नीचे कोशिश कर रहे हैं। वे कह रहे हैं, कुछ भेजो उनके लिए। कोई अप्सरा भेजो, कोई पद भेजो, कहीं गवर्नर बनाओ, कुछ करो, नहीं तो वे ऋषि-मुनि आ रहे हैं। वे चल दौड़ेंगे, आज नहीं कल उतार कर प्रधान मंत्री को, राष्ट्रपति को नीचे करेंगे खुद आकर क्योंकि वहां एक ही बैठ सकता है, तो वह जो एक बैठा हुआ है, दिक्कत में है।

लाओत्से ने कहा है—उस जगह रहना जो आखिरी हो, ताकि कोई तुम्हें धक्का देने न आए। आखिरी जगह खड़े हो जाना, ताकि तुम्हें कोई धक्का न दे। अगर पहले जाने की कोशिश करोगे, तो अनेक तुम्हें पीछे खींचने की कोशिश करेंगे। तो इन्द्र बेचैन है।

कृष्ण से अर्जुन कह रहा है कि देवताओं को भी मैं देख रहा हूं कि वे कंप रहे हैं, भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए हैं। आपके नाम और गुणों का उच्चारण कर रहे हैं। महर्षि और सिद्धों के समुदाय 'कल्याण होवे'—ऐसा कहकर उत्तम-उत्तम शब्दों द्वारा आपकी प्रशंसा कर रहे हैं। महर्षि और सिद्धों के समुदाय भी कह रहे हैं—कल्याण हो, कल्याण होवे, दया हो, कृपा हो, अनुग्रह हो। महर्षि और सिद्धों के समुदाय भी क्यों घबड़ा रहे हैं? मिटने का भय आखिरी सीमा तक है, आखिरी सीमा तक। जिसने बहुत सी सिद्धियां पा ली हैं, उसको सिद्ध कहा है। वे सिद्ध महावीर और बुद्ध के अर्थों में नहीं हैं। सिद्ध उसको कहा है, जिसने बहुत-सी सिद्धियां पा ली हैं। ऋद्धियां-सिद्धियां पा ली हैं, चमत्कार कर सकता है। वह भी कंप रहा है। महर्षि जो बहुत जानते हैं, ज्ञान का अम्बार जिनके ऊपर है, जिनकी जानकारी का कोई अन्त नहीं है, वे भी कंप रहे हैं। वे भी कह रहे हैं, कल्याण, कल्याण, दया करो, क्षमा करो, भयभीत हो रहे हैं। क्यों? इस तरफ, दूसरी तरफ से समझें।

बुद्ध ने कहा है जब तक तुम्हें ख्याल है कि तुम हो, तब तक तुम्हारा भय नहीं मिट सकता। तो बुद्ध ने कहा है, अगर तुम भय से मुक्त होना चाहते हो, तो तुम पहले ही मान लो कि तुम हो ही नहीं। और तुम इस तरह जियो, जैसे नहीं हो। और तुम्हारी एक ही साधना हो कि तुम हो ही

नहीं। फिर तुम्हें कोई भयभीत न कर सकेगा। और एक क्षण भी जिस दिन तुम्हें यह अनुभव हो जाएगा कि तुम हो ही नहीं, शून्य हो, उस दिन तुम्हें कहीं भी भय का कोई कारण नहीं रह गया; क्योंकि जो मिट सकता था, उसे तुमने खुद ही त्याग दिया। अब तो वही बचा है, जो मिट ही नहीं सकता।

हमारे भीतर जो 'मैं' का भाव है, वह मिट सकता है। और हमारे भीतर जो 'मैं-शून्यता' की अवस्था है, वह नहीं मिट सकती। 'मैं' स्ट्रक्चर है, ढांचा है हमारे चारों तरफ, वह मिटेगा। जैसे शरीर का एक ढांचा है, वह मृत्यु में मिटेगा। ऐसे ही 'मैं' का भी एक ढांचा है, वह भी मिटेगा। इस ढांचे के भीतर एक शून्य, ऐसा समझें कि आपने एक मकान बनाया। मकान तो मिटेगा, दीवालें तो गिरेंगी, खंडहर होगा, देर-अबेर। लेकिन मकान के भीतर जो शून्य आकाश था, वह नहीं मिटेगा। जब आपकी दीवालें नहीं थीं तब भी शून्य आकाश था, फिर आपने दीवालें उठाईं तो आपने शून्य आकाश को दीवालों के भीतर घेर लिया, फिर आपकी दीवालें गिर जावेंगी। वह शून्य आकाश वहीं के वहीं रहेगा। और ध्यान रखें मकान है क्या— दीवालों का नाम मकान नहीं है; क्योंकि दीवालों में कौन रह सकता है! रहते तो शून्य आकाश में हैं। दीवाल में रह सकते हैं आप? रहते कमरे में हैं। अंग्रेजी का शब्द रूम बहुत अच्छा है। रूम का मतलब होता है— स्पेस। आप रहते रूम में हैं। खाली जगह में हैं। दीवालों में नहीं रहते।

अगर अकेली दीवालें ही हों मकान में, और खाली जगह न हो, तो उसको कौन मकान कहेगा। आप रहते खाली जगह में हैं, वही जीवन है। दीवालें सिर्फ खाली जगह को घेरे हुए हैं। दीवालें नहीं थीं तब यह खाली जगह थी, यह रूम था, बिना दीवाल के। कल दीवालें गिर जायेंगी, तब भी यह रूम रहेगा, बिना दीवाल के रहेगा। अगर आपने दीवालों को समझा है कि अपना मकान है, तो आप घबराए रहेंगे कि आज मिटा, कल मिटा। अगर आपने इस जगह, रूम को समझा कि मेरा मकान है, फिर आपको भय की कोई भी जरूरत नहीं है।

'मैं' दीवाल है। भीतर जो शून्य, शान्त चैतन्य है—वह आकाश है। देवता भी कंपेंगे, सिद्ध भी कंपेंगे, वे सभी के सभी, किसी न किसी तरह से 'मैं' से अभी घिरे हुए हैं।

और हे परमेश्वर ! जो एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य तथा आठ वसु और साध्य गण, विश्वदेव तथा अश्विनीकुमार, मरुदगण और पितरों का समुदाय तथा गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धगणों के समुदाय हैं, ये सभी विस्मित हुए आपको देखते हैं । उनकी किसी की समझ में नहीं आता कि यह क्या है।

जहां द्वंद खो जाते हैं, वहां समझ भी खो जाती है। और केवल विस्मय रह जाता है। समझ चलती है तब तक, जब तक द्वंद को अलग-अलग करके हम रखते हैं। जहां एक हो जाती हैं दोनों बातें वहां समझ खो जाती है। और यह जो नासमझी है, समझ के खो जाने से जो आती है, इस नासमझी को ज्ञान कहा है। यह जो नासमझी है, इसे ज्ञान कहा है। इस ज्ञान के क्षण में सिर्फ भीतर का शून्य, बाहर का शून्य दिखाई पड़ता है, जो एक हो गए। और बाहर भीतर भी दिखायी नहीं पड़ता कि क्या बाहर है, क्या भीतर है। दोनों एक हो गए होते हैं। इस बाहर भीतर की एकता में, इस शून्य में ही भय तिरोहित होता है।

अर्जुन कह रहा है कि सभी भयभीत हो रहे हैं। आपका यह रूप देखकर सभी विस्मित हो गए हैं—किसी को कुछ समझ में नहीं पड़ रहा है।

● संकलन : *अरविन्दकुमार*, जबलपुर

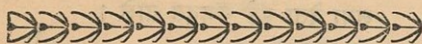

मनन जीवनोपयोगी *(आध्यात्मिक हिन्दी मासिक)*

जिसमें प्रतिमास सन्त-महात्मा व विद्वानों के विचारों को संकलित कर ४० पृष्ठों में मन-मोहक चित्रों सहित दो रंगों में पाठकों तक पहुंचाया जाता है।

मूल्य—१ प्रति : ५० पैसे, वार्षिक : ५ रुपये

प्राप्ति स्थान—

गुप्ता मिल्स इस्टेट, रे रोड, बम्बई–१०

टूटे खिलौनों का सिसकता ढेर

मेरा अतृप्त अहम्
इकलौते बालक-सा
रूठ-रूठ जाता है ।
मेरे सामर्थ्य की वामन भुजाओं की
थकी-थकी जकड़न से
छूट-छूट जाता है।

लेकिन
मेरा विवेक
इसकी नस-नस पहचानता है।
कब इसको क्या देना
विधियां सब जानता है ।

जब भी अतृप्त अहम् चाहता है
वासना के
भोग के लबरेज प्याले,
मैं सभी इन प्यालियों को
त्याग औ' वैराग्य की
अलमारियों में रख
लगा देता बड़े मजबूत ताले ।
और
उसको धर्म के, इन्साफ के, ईमान ने
चिकने सलोने
कुछ खिलौने दे
स्वयं
कुछ पुस्तकों की, आयतों की आड़ में
छिप बैठकर करता निरीक्षण
खेल का ।

वह निरा अनजान
मेरे अहम् का बालक
मग्न हो खेल में
सब भूल जाता ध्यान घर की जेल का।

किन्तु
जैसे ही खिलौने टूटते हैं
या कुछ हम उम्र साथी रूठते हैं,
यह अहम्
फिर से मचलता है
अधूरी वासना के, कामना के
जाम पीने के लिए,
अस्तित्व के व्यामोह में पड़
भूत के उजड़े कटे-से मुंह फटे-से
प्यार को
हर बार सीने के लिए,
फिर जुटा देता नये
रंगीन माटी के खिलौने
और
मेरे अहम् का बालक
उलझ जाता उन्हीं के
वायवी व्यापार में।

इस तरह
अब तक इन टूटे खिलौनों के
सिसकते ढेर में
घुटती रही है साँस मेरी

और
मेरे अहम् का बालक
थका-मांदा बेचारा रो रहा है

क्योंकि
उसका गया विश्वास
मिट्टी के खिलौनों पर
मिट्टी के खिलौनों-सा

और
मन बहलाव के
फरमान सब
अरमान सब जाली पड़े हैं।

किन्तु
मैं तो जानता हूं
दूँ कहां से वासना का दहकता विश्राम
इन अलमारियों में
जाम सब खाली पड़े हैं।

●

□ डा० कशोर काबरा,
अहमदाबाद

परमात्मा बुद्धि से रहित है

[भगवान श्री द्वारा कैवल्य उपनिषद पर दिये एक प्रवचन का अंश]

सूत्र कहता है, मैं बुद्धि से रहित हूं। इसे थोड़ा समझना पड़ेगा, क्योंकि इसमें तो बहुत भय मालूम पड़ेगा कि परमात्मा—और बुद्धि से रहित! हम तो सोचते हैं अपने मन में कि सारी बुद्धि उसकी है, सारी बुद्धिमत्ता उसकी है। सबसे ज्यादा बुद्धिमान, और सारे ज्ञान का सागर है वह—ऐसा हम सोचते हैं। यह सूत्र तो बहुत उल्टी बात करता है। कहता है—बुद्धि से रहित।

बुद्धि से रहित का अर्थ क्या होता है?

बुद्धि का अर्थ है—विचार की व्यवस्था। बुद्धि का अर्थ है—विचार का उपकरण, विचार का संस्थान। विचार अज्ञानी के लिये जरूरी है। जिसे कुछ पता नहीं है, वो विचार करता है। जिसे पता है, वो विचार क्यों करेगा? तो बुद्धि अज्ञानी का उपकरण है, ज्ञानी का नहीं। ज्ञानी बुद्धि रहित हो जाता है। बुद्धि का मतलब ही यह है, कि जो मुझे पता नहीं, वो मुझे सोचना पड़ता है, तो सोचने की जो प्रक्रिया मेरे भीतर है, उसका नाम ही बुद्धि है। सोच-सोचकर मैं पता लगाता हूं। ऐसा समझें, कि एक अंधा आदमी है, लकड़ी से टटोल-टटोल कर चलता है, क्योंकि आंख उसके पास नहीं है। इसलिये लकड़ी सदा हाथ में रखता है, उससे ही टटोल कर दरवाजा खोजता है। बुद्धि लकड़ी है—अज्ञानी के हाथों में। उससे हम टटोलते हैं, कहां है दरवाजा? क्योंकि दरवाजा पता नहीं है। तो टटोलते हैं, टकराते हैं, भूलचूक करते हैं। इसीलिये बुद्धि का ढंग ही भूल-चूक करके सीखना है। ट्राय, इरर, एंड लर्न, कोशिश करो, भूल करो, और सीखो। अंधा यही करता है। टटोलता है, दीवार पाई, सिर टकरा गया, तो और जगह टटोला, वहां भी द्वार नहीं, तो और जगह टटोला। पच्चीस जगह टटोलता है, तब कहीं दरवाजा मिलता है। अंधे का भी टटोलना बंद हो जायेगा। अगर रोज-रोज उसी मकान से निकले तो। दरवाजे का उसे अंदाज होने लगेगा। टटोलने की जरूरत न रही। लेकिन नये मकान में फिर टटोलना पड़ेगा।

कभी आपने ख्याल किया कि आप विचार तभी करते हैं, जब कोई चीज नयी होती है, आपको पता नहीं होती। जब पता हो जाती है, पुरानी

पड़ जाती है, तो आप विचार बंद कर देते हैं। रोज-रोज जो काम आप करते हैं, उसमें बुद्धि का उपयोग नहीं करना पड़ता। एक आदमी कार ड्रायविंग सीख रहा है, तो पहले-पहले बुद्धि की जरूरत पड़ती है। फिर जैसे अनुभवी हो जाता है, बुद्धि को बिल्कुल छोड़ देता है। कुशलता का मतलब ही है कि बुद्धि गैर जरूरी हो गई। अब यह सिगरेट पीता रहे, गाना गाता रहे, रेडियो सुनता रहे, बातचीत करता रहे, कुछ भी करता रहे, कार ड्राइव होती रहती है। इस अंधे को अब दरवाजा मिल गया। लेकिन अगर अचानक कोई दुर्घटना का क्षण आ जाये, तो फिर बुद्धि का उपयोग करना पड़ता है, क्योंकि इसका कोई अभ्यास नहीं था। दुर्घटना का अभ्यास करियेगा भी कसे? उसका अभ्यास हो नहीं सकता, वो तो घटती है, इसलिये तो उसे हम दुर्घटना कहते हैं। जिसका अभ्यास हो सके, वो दुर्घटना नहीं है। जिसका अभ्यास ही न हो सके, और घटे, उसी का नाम दुर्घटना है। इसलिये दुर्घटना में थोड़ी सी बुद्धि की जरूरत पड़ती है, आदमी एकदम से चौंक कर सोचना शुरू कर देता है—क्या करे? तो बुद्धि अज्ञानी का उपकरण है, जैसे लकड़ी अंधे का। बुद्धि टटोलने की व्यवस्था है, अंधेरे में टटोलना है।

परमात्मा बुद्धि रहित है, इसका मतलब है, उसके लिये कोई अंधेरा नहीं है। इसका अर्थ है कि उसे कुछ अज्ञात नहीं है, जो भी है, सब उसके सामने स्पष्ट है। सोचने का अब कोई कारण नहीं रह जाता, इसलिये जिस उपकरण से सोचा जाता है, उसके होने की भी कोई जरूरत नहीं। बुद्धि सीमित, अज्ञानी का उपकरण है, इसलिये जब तक आप सीमित और अज्ञानी हैं, आपको बुद्धि की जरूरत पड़ेगी, या जब तक आप बुद्धि की जरूरत बनाये रखेंगे, आप सीमित और अज्ञानी ही बने रहेंगे। बुद्धि के साथ असीम नहीं हुआ जा सकता। अगर हिम्मत करें आप बुद्धि को छोड़ देने की, तो शायद परमात्मा में छलांग लग जाये। जो बुद्धि रहित है, उसमें बुद्धि रहित होकर ही आप उतर पायेंगे। अगर बुद्धि लेकर वहां गये, तो परमात्मा का दरवाजा आपको न मिलेगा, इसलिये बुद्धिमान अक्सर उससे चूक जाते हैं। कभी-कभी कोई कबीर, कोई नानक, कभी कोई मुहम्मद, न पढ़े न लिखे, कभी किसी ने जाना नहीं था, कि इनमें भी बुद्धि है, अचानक उसमें छलांग लगा जाते हैं।

मुहम्मद को जब पहली दफा छलांग लग गई, तो मुहम्मद को खुद ही भरोसा न आया कि किसी को कहूंगा, तो कोई मानेगा। मुहम्मद ने डरते-

डरते सबसे पहले अपनी पत्नी को यह बात बताई कि ऐसा हो गया है। तो मुहम्मद की जो पहिली अनुयायी थी, वो उनकी पत्नी थी। और एक लिहाज से यह महान सफलता है, इस दुनिया में सबको परिवर्तित कर लेना आसान है, पत्नी को परिवर्तित करना बहुत मुश्किल है। बुद्ध को भी इसमें मुश्किल पड़ गई थी। मुहम्मद की यह अद्‌भुत सफलता है। मनुष्य जाति के इतिहास में, पुरुषों की जो कई सफलतायें गिनी जायें, उनमें इसे भी गिनना चाहिये कि मुहम्मद की पहिली अनुयायी उनकी पत्नी थी। फिर अहिस्ता-अहिस्ता निकटतम लोगों में मुहम्मद ने बात कही। और तब भी मुहम्मद को जो तकलीफ झेलनी पड़ी, वो मुहम्मद के मुल्क के बुद्धिमान लोगों द्वारा दी गई थी, क्योंकि बुद्धिमान यह मान न सके कि यह आदमी, न पढ़ा न लिखा, न बुद्धि का कोई सबूत देता, इसको वो घटना हो जाये, और हमें न घटे।

कबीर को भी जो तकलीफ हमारे मुल्क में झेलनी पड़ी, वो पंडितों के कारण। पंडितों को मानना मुश्किल पड़ा, कि यह जुलाहा, कपड़े बुनता रहा अब तक, कपड़े बेचता रहा सड़कों पर, अचानक परमज्ञानी कैसे हो गया। ये भरोसे की बात नहीं, क्योंकि हमारा ख्याल ये है कि ज्ञान जो है, वो बुद्धि के अभ्यास से होता है। निश्चित ही इस जगत के सारे ज्ञान, बुद्धि के अभ्यास से ही होते हैं, लेकिन उस जगत का कोई भी ज्ञान, बुद्धि के अभ्यास से नहीं होता।

यहां बुद्धि सहयोगी है, वहां बुद्धि बाधा है।

यहां बुद्धि मार्ग है, वहां बुद्धि ही दीवाल है। संसार में जाना हो, तो बुद्धि को बढ़ाते चले जाना, यहां अन्धे की लकड़ी बहुत काम पड़ेगी, क्योंकि अन्धों का लोक है यह। जितनी सजग हो, जितनी संवेदनशील हो लकड़ी, उतनी ही सफलता तुम्हारे हाथ है। लेकिन अगर परमात्मा की तरफ कदम उठाना हो, तो इस लकड़ी को यहीं छोड़ देना, क्योंकि अन्धों को वहां कोई प्रवेश नहीं है। वहां लकड़ी से टटोलकर नहीं पहुंचा जाता। इस लकड़ी को छोड़कर ही वहां पहुंचना सम्भव है, क्योंकि बाहर जाना हो तो टटोलना पड़ता है, पर भीतर जाने में क्या टटोलना? सब लकड़ियां छोड़ देनी हैं, सब यात्रा वगैरह बन्द कर देना है; और आदमी वहां पहुंच जाता है।

बहुत कीमती है यह सूत्र।

□ संकलक : *स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती*

हमारी अपेक्षाएं और मुल्ला नसरुद्दीन की प्रज्ञा

[गीता अध्याय-९ पर भगवान श्री रजनीश द्वारा दिनांक ६ मार्च, १९७२ को बम्बई में दिये गये प्रवचन का एक अंश प्रस्तुत है। तेरह प्रवचनों वाली यह पुस्तक शीघ्रता से छप रही है।]

मैंने सुना है : मुल्ला नसरुद्दीन एक टर्किश स्नानगृह में स्नान करने गया। यात्रा से आया था, फटे-पुराने उसके कपड़े थे, धूल-धंवास से भरा था। शकल पर भी धूल थी, लम्बी यात्रा की थकान थी, दीन-हीन उसके कपड़े थे। तो टर्किश बाथ के सेवकों ने समझा कि कोई गरीब आदमी है। स्वभावतः जहां आशा में आदमी जीता है, वहां अमीर की सेवा की जा सकती है; गरीब की सेवा नहीं की जा सकती। होना तो उल्टा चाहिए कि गरीब की सेवा हो; क्योंकि सेवा की उसे ज्यादा जरूरत है; अमीर को उतनी जरूरत नहीं है। अमीर को सेवा मिलती ही रहती है।

नौकर-चाकरों ने उस पर कोई ध्यान ही नहीं दिया। फटी-पुरानी तौलिया उसे दे दी; क्योंकि पुरस्कार की कोई सम्भावना न थी। उपयोग में लाया हुआ साबुन उसे दे दिया। पानी की भी किसी ने चिन्ता नहीं की कि गरम है कि ठण्डा है। मालिश करने वाले ने भी ऐसे ही हाथ फेरा, जैसे जिन्दा आदमी पर हाथ न फेरता हो।

नसरुद्दीन सब देखता रहा। स्नान करके बाहर निकला, कपड़े पहने। किसी नौकर को कुछ आशा ही नहीं थी कि इससे कुछ टिप भी मिलेगी, कोई पुरस्कार भी मिलेगा। लेकिन उसने खीसे से उस देश को जो सबसे कीमती स्वर्ण-मुद्रा थी वह बाहर निकाली। प्रत्येक नौकर को एक-एक स्वर्ण-मुद्रा दी, और अपने रास्ते पर चल पड़ा।

अवाक् रह गये नौकर। छाती पीट ली दुःख से। दुःख से कह रहा हूं ! क्योंकि, अगर उसकी सेवा ठीक से की होती, तो आज पता नहीं क्या हो जाता। स्वर्ण-मुद्रा कभी किसी ने नहीं दी थी। नवाब भी वहां से गुजरे थे, वजीर भी वहां से गुजरे थे। एक-एक नौकर को एक-एक स्वर्ण-मुद्रा किसी ने कभी भेंट न दी थी और

इतनी सेवा की थी। यह आदमी सब को मात कर गया। नौकरों की छाती पर सांप लोट गया। उस रात नौकर सो नहीं सके। बार-बार यही ख्याल आया—बड़ी भूल हो गयी। अगर ठीक से सेवा की होती—सेवा तो की ही नहीं उस आदमी की—अगर ठीक से सेवा की होती, तो पता नहीं क्या दे जाता !

मुल्ला नसरुद्दीन दूसरे दिन फिर उपस्थित हुआ—और भी फटे-पुराने कपड़े और भी धूल-धंवास भरा हुआ। लेकिन ऐसे उनका स्वागत हुआ, जैसे किसी सम्राट का होता है। जो श्रेष्ठतम तेल उनके पास था निकाला गया। जो श्रेष्ठतम साबुन थी, वह आयी। नये ताजे तौलिये आये। गरम पानी आया। घण्टों उसकी सेवा हुई। घंटों उसे नहलाया गया। वह शांत, जैसे कल नहाता रहा था, वैसे ही नहाता रहा। जाते वक्त उसने खीसे में हाथ डाला। नौकर सब हाथ फैला कर आशा में खड़े हो गये। जो उस देश का सबसे छोटा पैसा था, वह उसने एक-एक पैसा उनको भेंट किया !

छाती पर पत्थर पड़ गया। वे सब चिल्लाने लगे कि 'तुम आदमी पागल तो नहीं हो ? यह तुम क्या कर रहे हो ? कल जब हमने कुछ भी नहीं किया, तो तुमने स्वर्ण-मुद्राएँ दीं! और आज जब हमने सब-कुछ किया, तो ये पैसे दे रहे हो ?'

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, "यह कल का पुरस्कार है, आज का पुरस्कार कल दे चुका हूं।"

सुना है, उस रात भी नौकर नहीं सो सके !

हम अपेक्षाएं बांधकर जीते हैं। कुछ न करें और स्वर्ण-मुद्रा मिल जाये, तो भी दुख होता है। कुछ करें, स्वर्ण-मुद्रा न मिले, तो भी दुख होता है। 'अपेक्षा में दुख है, अपेक्षा में पीड़ा है।'

□ प्रेषक : *स्वामी योग चिन्मय*, बम्बई

★

'युक्रांद' परिवार को—

नवीन वर्ष में कोई बात नई आती है,
बात सौगात है जो इन्कलाब लाती है,
समस्त विश्व को जिस क्रांति की प्रतीक्षा है—
वह 'युक्रांद' के पृष्ठों से चली आती है।

जबलपुर
१-१-१९७४

समस्त शुभकामनाओं सहित—
इन्द्रदेव चोपरा

भगवान रजनीश दर्शन की पत्र-पत्रिकाएं

	प्रकाशन स्थल	वार्षिक मूल्य
१ युक्रांद (हिन्दी मासिक) :	C/o युक्रांद प्रकाशन, ७६०, राइट-टाउन, जबलपुर	१२-००
२ आनंदिनी (हिन्दी-मासिक):	C/o सुप्रीम वूलन मिल्स, इंडस्ट्रियल स्टेट, लुधियाना	१०-००
३ योग दीप (मराठी पाक्षिक):	C/o जीवन जागृति केन्द्र, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना	१०-००
४ SANNYAS (English Bi-Monthly)	C/o Selprint, A. Z., Industrial Area, Fergusson Road, Lower Parel, BOMBAY : 13	१८-००
५ "रजनीश-पत्रिका" (गुजराती मासिक)	जीवन-जागृति-केन्द्र, भवानी चेम्बर्स, आश्रम रोड, अहमदाबाद–६	१०-००

साहित्य प्राप्ति हेतु संपर्क स्थल :

(१) ईश्वर-समर्पण, जीवन जागृति केन्द्र, ३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बंदर रोड, बम्बई ६ : फोन : ३२७००१

(२) स्वामी सत्य बोधि सत्व, जीवन जागृति केन्द्र, भवानी चेम्बर्स, आश्रम रोड, अहमदाबाद-६, फोन : ७६५७३

(३) स्वामी अमृत बोधि सत्व, जीवन जागृति केन्द्र, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना-१, फोन : २४१४८

(४) स्वामी आनन्द गौतम, जीवन जागृति केन्द्र, ४१६, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर-१

(५) अरविन्द कुमार, जीवन जागृति केन्द्र, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर फोन : २६५७

(६) स्वामी दयाल भारती, जीवन जागृति केन्द्र, कबूला पुल, सागर

(७) स्वामी आनन्द वेदांत, घंटाघर, नीमच (म. प्र.)

(८) स्वामी निकलंक भारती, विजय गृह निर्माण सामग्री भंडार, गाडरवारा

(९) मोतीलाल बनारसीदास, बुक-सेलर्स एवं पब्लिशर्स, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७

(१०) मोतीलाल बनारसीदास, अशोक राज पथ, पटना-४

(११) चंद्रकांत न० पटेल, आसोपालव, अपोजिट : बैंक आफ इंडिया, रावपुरा, बड़ौदा (गुज०)

नव-वर्ष संदेश

ईश्वर है निकटतम उस समय जब तुम प्रसन्न हो और तुम्हारे प्राण गीतों से भरे हैं और तुम्हारी आत्मा नृत्य कर रही है।

क्योंकि, यह है परम आनन्द और इसलिए आनन्दित होकर ही तुम उसे पा सकोगे।

त्यागो उदासी और लम्बे चेहरे।

त्यागो यह रुग्ण गम्भीरता।

उसके पास जाने का यह ढंग नहीं।

उत्सव ही उसका एकमात्र द्वार है।

११-१२-१९७३

युक्रान्द

जनवरी, १९७४